www.thearyasamaj.org

जिसने बदली दिशा जगत् की,
धरती और आकाश की ।
जय बोलो ऋषि दयानन्द की,
जय सत्यार्थ प्रकाश की ।।

।। ओ३म् ।।

वर्ष -६० अंक - ०१
मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक :१००) रु०
आजीवन -१०००) रु०
प्रतिमास ता० १३ को प्रकाशित

आर्य-संसार

पौष-माघ : सम्वत् २०७३ वि०
जनवरी – २०१७

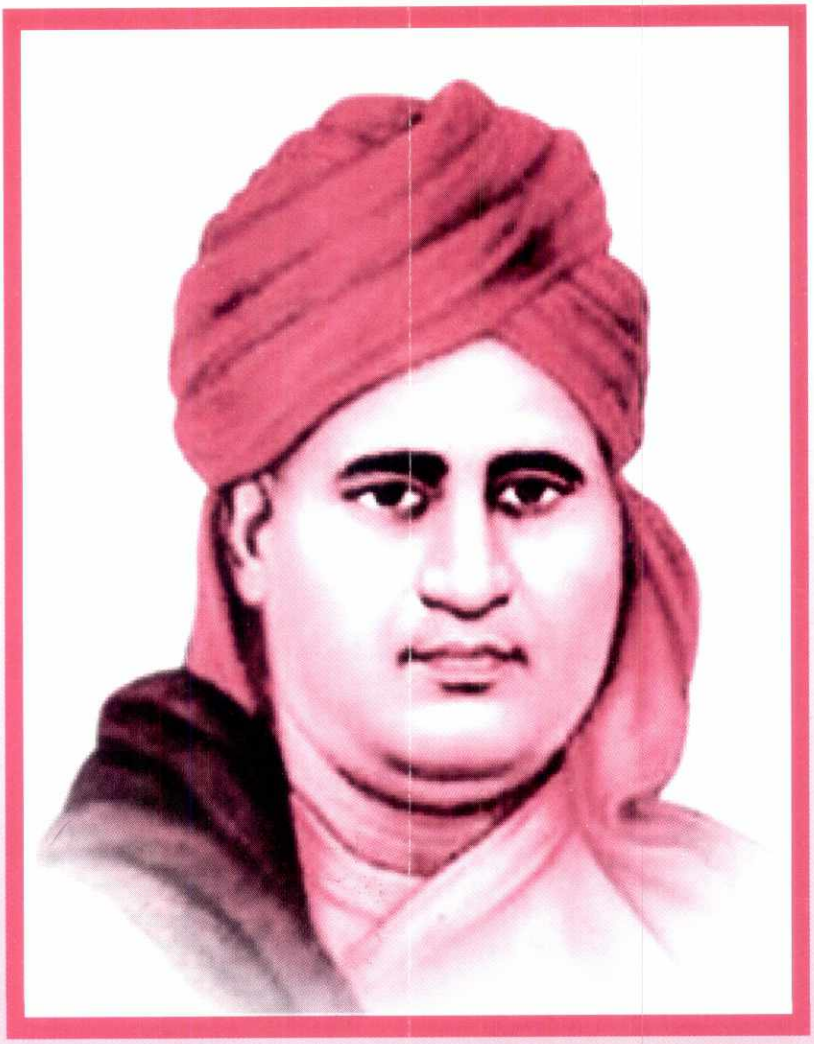

महर्षि दयानन्द सरस्वती

www.thearyasamaj.org

आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ

आर्य समाज कलकत्ता का १३१वाँ वार्षिकोत्सव सम्पन्न

आर्य जाति का सुयश अक्षय हो, आर्य ध्वजा की अविचल जय हो।
आर्य जनों का ध्रुव निश्चय हो, आर्य बनावें वसुधा सारी ।।

इसी संकल्प और उद्देश्य को सम्मुख रखते हुए आर्य समाज कलकत्ता का १३१वाँ वार्षिकोत्सव शनिवार २४ दिसम्बर, २०१६ से १ जनवरी २०१७ पर्यन्त आम्हर्स्ट स्ट्रीट अवस्थित हृषीकेश पार्क में हर्षोल्लास पूर्वक सम्पन्न हुआ। इस उत्सव में प० बंगाल प्रान्त के अतिरिक्त, झारखण्ड, बिहार, उत्तरप्रदेश एवं नेपाल से भी सैकड़ों जन उपस्थित हुए।

आमन्त्रित विद्वत्गण – आचार्य डॉ० शिवदत्त पाण्डेय (सुल्तानपुर), डॉ० ज्योत्सना आर्या (रीवा), पं० नरेशदत्त आर्य (बिजनौर)।

ऋग्वेद पारायण यज्ञ – शनिवार २४ दिसम्बर २०१६ को प्रातः ७.३० बजे आचार्य डॉ० शिवदत्त पाण्डेय (सुल्तानपुर) के ब्रह्मत्व में अथर्ववेद पारायण यज्ञ प्रारम्भ हुआ। ऋत्विजगण के रूप में वेद पाठ कर रहे थे प० आत्मानन्द शास्त्री, प० देवनारायण तिवारी, पं० नचिकेता भट्टाचार्य, पं० वेदप्रकाश शास्त्री, पं० योगेशराज उपाध्याय, पं० कृष्णदेव मिश्र एवं पं० अर्चना शास्त्री। मुख्य यजमान उपमंत्री श्री कृष्ण कुमार जायसवाल एवं उपमंत्री श्री रंजीत झा एवं प्रधान जी के सुपुत्र श्री सुप्रतीक जायसवाल ने संकल्पपूर्वक ऋग्वेद प्रारायण यज्ञ को प्रारम्भ किया। सुसज्जित यज्ञशाला में दो यज्ञकुण्ड बनवाये गये थे। पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति १ जनवरी रविवार को प्रातः १० बजे हजारों नर-नारियों की उपस्थिति में सम्पन्न हुई। कुल ३६ यजमानों ने सपत्नीक उपस्थित होकर यज्ञ के संचालन में अपना सहयोग प्रदान किया।

ध्वजोत्तोलन :- २४ दिसम्बर २०१६ प्रातः यज्ञ के उपरान्त १० बजे 'ओ३म्' ध्वजारोहण आचार्य डॉ० शिवदत्त पाण्डेय जी के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। ध्वजगीत आर्य कन्या महाविद्यालय की छात्राओं द्वारा प्रस्तुत किया गया। इस अवसर पर आर्य कन्या महाविद्यालय की छात्राओं ने बैण्ड ध्वनि भी प्रस्तुत की एवं रघुमल आर्य विद्यालय के छात्र भी सम्मिलित हुए।

शोभा यात्रा :- २४ दिसम्बर २०१६ अपराह्न २ बजे से आर्य समाज मन्दिर, १९ विधान सरणी कोलकाता-६ से एक विशाल एवं सुसज्जित शोभायात्रा निकाली गयी जो विवेकानन्द रोड, गणेश टॉकीज, कलाकार स्ट्रीट, सत्यनारायण पार्क, महात्मा गाँधी रोड़, कॉलेज स्ट्रीट, विधान सरणी एवं बेचू चटर्जी स्ट्रीट होते हुए उत्सव स्थल हृषीकेश पार्क में पहुँचकर समाप्त हुयी। इस शोभायात्रा में हजारों की संख्या में स्त्री, पुरुष व बच्चे सम्मिलित हुए। आर्य समाज कलकत्ता, आर्य स्त्री समाज कलकत्ता के सदस्य एवं सदस्यायें, आर्य कन्या महाविद्यालय एवं रघुमल आर्य विद्यालय के छात्र-छात्राएं तथा अध्यापक-अध्यापिकाओं के अतिरिक्त आर्यसमाज बड़ाबाजार, आर्य समाज हावड़ा, आर्य समाज विद्यासागर, आर्य समाज जोड़ासाँकू, आर्य समाज गारूलिया, प्रभृति समाजों के अधिकारी एवं सदस्य तथा गुरुकुल कोलाघाट, गुरुकुल आबादा

(शेष पृष्ठ २७ पर)

www.thearyasamaj.org

ओ३म्

आर्य-संसार

वर्ष ६० अंक — ०१
पौष-माघ २०७३ वि०
दयानन्दाब्द १९२
सृष्टि सं० १,९६,०८,५३,११७
जनवरी — २०१७

आद्य सम्पादक
प्रो० उमाकान्त उपाध्याय
(स्मृति शेष)

सम्पादक :
श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल

सहयोगी संपादक :
श्रीमती सरोजिनी शुक्ला
श्री सत्यप्रकाश जायसवाल
पं० योगेशराज उपाध्याय

शुल्क : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १०० रुपये
आजीवन : १००० रुपये

इस अंक की प्रस्तुति

१. आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ		२
२. इस अंक की प्रस्तुति		३
३. यज्ञशला का वरण (४८)	वेद-वीथिका से	४
४. स्वामी जी का स्वकथित जीवन-चरित्र	पं० लेखराम द्वारा संकलित	७
५. वेद में आदर्श स्त्री शिक्षा	डॉ० अशोक आर्य	९
६. वैदिक अर्थव्यवस्था	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	११
७. वेदवाणी के ज्ञान से लाभ	मृदुला अग्रवाल	१९
८. वर्णाश्रम व्यवस्था समाज व राष्ट्र के लिए कितनी हितकर	श्री खुशहाल चन्द्र आर्य	२१
९. महर्षि दयानन्द : प्रातिभ व्यक्तित्व	श्री परीक्षित मंडल 'प्रेमी'	२३
१०. बाल जगत्—शिक्षा की पृष्ठभूमि	सत्येन्द्र सिंह आर्य	२५

आर्य समाज कलकत्ता
१९, विधान सरणी, कोलकाता-७०० ००६
दूरभाष : २२४१-३४३९ *email : aryasamajkolkata@gmail.com*

'आर्य संसार' में प्रकाशित लेखों का उत्तरदायित्व सम्बन्धित लेखकों पर है।
किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र कोलकाता ही होगा।

www.thearyasamaj.org

४८

यज्ञशील का वरण

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ।।

ऋ० ८-२-१८

शब्दार्थ :-

इच्छन्ति	=	इच्छा करते हैं, पसन्द करते हैं
देवा	=	देव लोग, दिव्य गुण विशिष्ट
सुन्वन्तम्	=	यज्ञ करते हुए को, यज्ञशील को
न	=	नहीं
स्वप्नाय	=	आलसियों की
स्पृहयन्ति	=	स्पृहा, इच्छा करते हैं
यन्ति	=	नियन्त्रण करते हैं
अतन्द्राः	=	आलस्य रहित देव लोग

भावार्थ :-दिव्यगुण विशिष्ट लोग यज्ञशीलों को पसन्द करते हैं। आलसियों को नहीं चाहते, बल्कि आलस्य रहित देव आलसियों का नियंत्रण कर देते हैं ।

विचार विन्दु :

१. देव कौन होते हैं ?
२. यज्ञशील का स्वरूप ।
३. देव गुण यज्ञशील को क्यों पसन्द करते हैं ?
४. देव गण प्रमादियों का नियंत्रण कैसे करते हैं ?

व्याख्या

देव या देवता दिव्यगुण से सम्पन्न होते हैं । इसीलिए देवों को अदिव्यगुण से घृणा होती है । आलस्य - प्रमाद अच्छे चरित्र के शत्रु हैं । आलसी प्रमादी अपने कर्तव्य कर्मों की भी उपेक्षा कर देते हैं ।

इस मंत्र में यह भाव व्यक्त किया गया हैं कि देवता आलसी, सोने वाले प्रमादियों को नहीं पसन्द करते हैं और आलस्य से रहित जो प्रमादहीन हैं, उन्हीं को देव प्राप्त होते हैं । उन्हें दिव्य गुणों से सम्पन्न कर देते हैं ।

दो तरह के मनुष्य होते हैं-एक वे हैं जो अपने कर्तव्य-कर्म के प्रति सदा सजग सावधान रहते हैं। दूसरी तरह के वे व्यक्ति होते हैं जो अपने कर्तव्य-कर्मों से प्रायः बहाना करके बचे रहते हैं, वे प्रमादी

www.thearyasamaj.org

होते हैं । मंत्र कहता है कि जो कर्तव्यशील हैं, यज्ञशील हैं, उन्हें देव, दिव्य गुण विशिष्ट व्यक्ति, पसन्द करते हैं । अर्थात् कर्तव्यशीलों को दिव्य-गुणों की प्राप्ति होती है ।

एक प्रश्न यह हैं कि देव कौन होते हैं ? क्यों किसी को देव कहा जाता हैं ? आचार्य यास्क ने बताया है -

'देवः कस्मात्-देवो दानात् द्योतनात् द्युस्थाने भवतीति वा'

सीधा भाव यह हुआ कि देवता दान करते हैं, किसी पदार्थ का द्योतन करते हैं, जैसे अग्नि आदि और द्युलोक में रहते हैं जैसे सूर्य आदि । हमारी व्याख्या के लिए मुख्य है दानशील होना । संसार में कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनको अपना मुख, अपना पेट, अपनी थाली, अपने बाल-बच्चे इतना ही दीखता हैं, वे स्वार्थी होते हैं और उन्हें दानव कहा जाता हैं । कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो दूसरों का उपकार, दूसरों की भलाई, दूसरों का दुःख पहले दूर करते हैं, वे दानशील-देव होते हैं । उनके लिए दुःख दूर करना प्रथम कर्तव्य हैं ।

एक प्रार्थना हैं -

'वह शक्ति हमें दो दयानिधे, कर्तव्य-मार्ग पर डट जावें
परसेवा, परउपकार में हम निज जीवन सफल बना जावें'

बस जो दूसरों की सेवा और परोपकार में अपने जीवन की सफलता समझते हैं वे देव-पुरुष होते हैं । उनके लिए नीतिकार कहते हैं -

'एके ते पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं विनघ्नन्ति ये' ।

एक वे पुरुष होते हैं-जो अपने स्वार्थ का बलिदान करके भी दूसरों के स्वार्थ की रक्षा करते हैं । ऐसे लोग देव-पुरुष कहलाते हैं । ये महानता से सम्पन्न महात्मा बुद्ध, शंकर, दयानन्द के सदृश होते हैं ।

मंत्र में कहा गया है कि देव-पुरुष यज्ञशीलों को पसन्द करते हैं । प्रश्न यह है कि यज्ञ क्या हैं ? सीधा सा उत्तर हैं कि जितने परोपकारी, परमार्थी काम हैं वे सब यज्ञ-कार्य हैं । हम व्यवस्था करते हैं, धन कमाते हैं । यदि हमारा जीवन, हमारा धन परोपकार के लिए हैं, परमार्थ के लिए हैं तो यह यज्ञ-कार्य हैं, और यदि वही कार्य स्वार्थ के लिए हैं तो वह यज्ञ नहीं हैं । भगवान् कृष्ण गीता में बड़ी कड़ाई से निर्देश करते हैं कि यज्ञ, दान और तप सदा करते रहना चाहिए । वे कहते हैं -

'यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यम् कार्यमेव तत्' ।

यज्ञ दान और तप को कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए । यज्ञ कई प्रकार के होते हैं, हम व्यवसाय करें, धन का अर्जन करें और उसे किसी पुण्य कार्य में लगा दें । गोशाला, धर्मशाला, पाठशाला सभी परोपकार के कार्य हैं । इसीलिए इनकी गणना यज्ञ-कार्यों में होती हैं । आज तीर्थ-स्थानों में अनेक धर्मशालाएं बन गई हैं । यात्रियों को अनेक सुविधायें मिल गई हैं। यह सब यज्ञ-कार्य हैं । काशी में निर्धन छात्रों को भोजन देने के लिए कई अन्न-क्षेत्र खुले हुए हैं । यह सब द्रव्यमय यज्ञ हैं ।

जो विद्वान स्वार्थवश नहीं, विद्यार्थियों के कल्याण के लिए विद्या-दान करते हैं, वे ज्ञान-यज्ञ करते हैं । अनेक बार सम्पन्न सेठ साहूकार अच्छे बड़े विद्वानों को बुलाकर कभी गीता-रामायण की कथा कराते

www.thearyasamaj.org

हैं, कभी उपनिषद् और वेदों की कथा कराते हैं। यह सब ज्ञानमय-यज्ञ हैं। ये सब कार्य जितने परोपकार के भाव से किये जायेंगे, उतने यज्ञ होंगे।

सबसे अधिक प्रचलित तो घृत, सामग्री, औषधियां, मेवे आदि को यज्ञ में आहुति देकर संसार को शुद्ध, प्राणवायु प्रदान करते हैं। यह भी बड़ा उत्तम यज्ञ हैं। आज के युग में वातावरण, वायु और प्राण वायु, सब प्रदूषित हो गये हैं। मनुष्य के लिए शुद्ध वायु में सांस लेना अत्यन्त कठिन हो गया हैं। इस प्रदूषण को दूर करना और मनुष्य को शुद्ध प्राण-प्रद वायु देना बड़ा भारी पुण्य कार्य हैं। अतः हवन रूपी यज्ञ भी श्रेष्ठ कार्यों में गिना जाता है।

सात्विक यज्ञ- श्रेष्ठ यज्ञ तो सात्विक यज्ञ है। श्री कृष्ण जी ने भगवद् गीता में सात्विक यज्ञ की एक परिभाषा बतायी है-

'अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।

यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्विकः ।।' गीता० १७-११

सात्विक यज्ञ में (१) फल की इच्छा न हो। (२) शास्त्र विधि के अनुकूल हो। (३) यज्ञ करना कर्तव्य है, ऐसा मन में निश्चय हो।

मंत्र में कहा है कि देव लोग प्रमादियों को नियंत्रण में बांध देते हैं - कैसे ? वस्तुतः प्रमादी, आलसी क्रियाशील नहीं होते। जो निष्क्रिय हो जाते हैं उनको अनेक तरह के रोग घेर लेते हैं। वस्तुतः वे अन्न खाने और सांस लेने मात्र के लिए जीवित हैं। नहीं तो जैसे मृत शव निष्क्रिय, निश्चेष्ट पड़ा रहता है वैसे वे भी सांस लेते हुए मुर्दे हैं। यह प्रकृति का नियम हैं कि प्रमादी सदा दुःख भोगते हैं और यज्ञशील सक्रिय, परोपकारी, परमेश्वर के वरदान में आनन्दित रहते हैं।

प्रमादी जीवित होकर भी मृत हैं -

प्रमाद व्यक्तिगत और जातिगत, दो प्रकार के होते हैं। यूं तो हर व्यक्ति अपने अच्छे या बुरे कार्यों को उचित ठहराने का प्रयास करता है, किन्तु अपने मनमानी सोच या तर्क से आलस्य प्रमाद का परिणाम नष्ट नहीं हो जाता। आलसी व्यक्ति अपने प्रमाद के कारण शारीरिक, पारिवारिक, सब प्रकार के कष्ट भोगता है। प्रमादी की दिनचर्या ही अस्त-व्यस्त शिथिल रहती है।

जातीय प्रमाद और भी भयानक होता है। छुआछूत एक जातीय प्रमाद है। केवल इस एक प्रमाद के कारण भारतवर्ष के करोड़ों हिन्दू मुसलमान और ईसाई बन गये और प्रमादी, पोंगापंथी तर्क देते रहे कि गंगा से लोटा-दो लोटा जल निकल जाने से गंगा सूख नहीं जाती और यही लोटा दो लोटा निकलते निकलते करोड़ों विरोधी हो गये। ऐसे प्रमादी जाति - समाज को भी मृतप्राय बना देते हैं। मृत व्यक्ति का अंग चील, कौवे, गीध नोचते खाते हैं और मृत शरीर निश्चेष्ट पड़ा रहता है। इसी तरह जातीय समाज की हानि होने पर जिन लोगों को कष्ट नहीं होता, वे लोग सामाजिक रूप से प्रमादी और मृत हैं। इन्हें देवता तो क्या, समझदार व्यक्ति भी पसंद नहीं करेंगे। अतः सामाजिक प्रमाद भी मृत्यु है।

•

www.thearyasamaj.org

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का जीवन वृत्त

अध्याय– १

गंगातट पर सात वर्ष का जीवन

(संवत् १९१७ से सं० १९२३ तक)

मथुरा में स्वामी विरजानन्द जी से अध्ययन

(संवत् १९१७ से चैत्र सं० १९२० तक)

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म फाल्गुन कृष्ण पक्ष दशमी को गुजरात में संवत १८८१ में हुआ था । पूरे भारतवर्ष में स्वामी जी का जन्म दिवस मनाया जाता है इसी अवसर पर आर्य समाज कलकत्ता ने निर्णय किया कि पं० लेखराम द्वारा संकलित एवं आर्य महामहोपदेशक कविराज श्री रघुनन्दन सिंह निर्मल द्वारा अनूदित महर्षि स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र धारावाहिक प्रकाशित किया जाय, इसी शृंखला में प्रस्तुत है यह धारावाहिक जीवन-चरित्र — सम्पादक

(गतांक से आगे)

आदर्श गुरु-शिष्य और आदर्श गुरु-दक्षिणा

गुरु-दक्षिणा के रूप में 'देश के लिये जीवन अर्पित कर दो' गुरु विरजानन्द जी की निराली माँग: शिष्य द्वारा विनयपूर्वक स्वीकृति—इस घटना के थोड़े दिन पश्चात् विद्या समाप्त की और आधा सेर लौग जो दंडी जी को अत्यन्त प्रिय थे उनको भेट किये और जाने की आज्ञा माँगी । विरजानन्द जी मनुष्य के बड़े पारखी थे । तीन वर्ष के समय में उन्होंने दयानन्द जी को व्याकरण के अष्टाध्यायी और महाभाष्य और वेदान्तसूत्र और इनसे अतिरिक्त भी जो कुछ विद्याकोष उनके पास था सब उन्हें सौंप दिया था और ऋषिकृत ग्रन्थों से उन्होंने जो बाते निश्चित की हुई थीं वे सभी उनके मस्तिष्क में

नोट — यह दंडी जी और स्वामी जी के सत्संग का फल है कि नैनसुख जड़िया जो संस्कृत का अक्षर लिखना भी नहीं जानता—अष्टाध्यायी के सूत्र और महाभाष्य की पंक्तियां उसे कंठस्थ हैं । केवल इतना ही नहीं प्रत्युत भागवत के खंडन के कई श्लोक भी उसने कंठ किये हुए हैं । उसका संस्कृत उच्चारण अत्यन्त शुद्ध है जैसा कि कदाचित् विद्वान् पंडितों का भी नहीं होता । वह संध्या करता है और संध्या के अर्थ भी उसको कंठस्थ है जिससे लगभग समस्त मथुरा नगर में बीस तीस विद्वानों के अतिरिक्त और कोई परिचित नहीं । वह मथुरा निवासी होते हुए भी मूर्तिपूजा से घृणा करता है । व्यवहार में स्पष्ट, सत्यवादी, निर्भीक और स्वतंत्रता प्रिय है ।

www.thearyasamaj.org

डाल दीं । उनका विचार था कि हमारे शिष्यों में से हमारे काम को यदि कुछ करेगा तो दयानन्द ही करेगा। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर विद्या समाप्ति की सफलता की गुरुदक्षिणा मांगी । दयानन्द ने निवेदन किया कि जो आपकी आज्ञा हो मैं उपस्थित हूँ । तब दंडी जी ने कहा कि (१) देश का उपकार करो, (२) सत्य शास्त्रों का उद्धार करो, (३) मतमतान्तरों की अविद्या को मिटाओ और (४) वैदिक धर्म का प्रचार करो । स्वामी जी ने अत्यधिक क्षमा प्रार्थना करते हुए और बहुत विनय पूर्वक इसको स्वीकार किया और वहाँ से विदा हो गये । गुरु जी ने आशीर्वाद दिया और चलते हुए एक अमूल्य बात और भी कह दी कि **मनुष्यकृत ग्रन्थों में परमेश्वर और ऋषियों की निन्दा है और ऋषिकृत में नहीं, इस कसौटी को हाथ से न छोड़ना ।**

मथुरा के विद्वानों की सर्वसम्मत राय : स्वामी दयानन्द झूठ कभी नहीं बोलते थे – मथुरा के समस्त विद्वान् पंडित इस विषय में सहमत हैं कि दंडी जी और स्वामी दयानन्द झूठ कभी न बोलते थे। सच्चे मनुष्यों के मित्र और सत्यप्रिय थे, झूठे मनुष्यों को पास तक न फटकने देते थे ।

स्वामी जी ने स्वयं भी शिक्षा प्रणाली के विषय में इस प्रकार वर्णन किया है –

''अर्थात् जो बुद्धिमान, पुरुषार्थी, निष्कपटी, विद्यावृद्धि के चाहने वाले नित्य पढ़ें-पढ़ावें तो डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्ष में महाभाष्य पढ़ के तीन वर्ष में पूर्ण वैयाकरण होकर वैदिक और लौकिक शब्दों का व्याकरण से बोध कर पुनः अन्य शास्त्रों को शीघ्र सहज में पढ़-पढ़ा सकते हैं । किन्तु जैसा बड़ा परिश्रम व्याकरण में होता है वैसा श्रम अन्य शास्त्रों में करना नहीं पड़ता और जितना बोध इनके पढ़ने से तीन वर्षों में होता है उतना बोध कुग्रन्थ अर्थात् सारस्वत, चन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमा आदि के पढ़ने से पचास वर्षों में भी नहीं हो सकता क्योंकि जो महाशय ऋषियों ने सहजता से महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्यों के कल्पित ग्रन्थों में क्योंकर हो सकता है। महर्षि लोगों का आशय जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े-बड़े परिश्रम से पढ़ के अल्प लाभ उठा सकें जैसे पहाड़ खोदना कौड़ी का लाभ होना । और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना बहुमूल्य मोतियों का पाना ।''

(सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ३, पृष्ठ-६८)

स्वामी जी के पास एक गीता और विष्णुसहस्र नाम की पुस्तक थी, वह मन्दिर लक्ष्मीनारायण के पुजारी को दे दी । स्वामी जी वैशाख मास के अन्त संवत् १९२० तदनुसार अप्रैल सन् १८६३ में दो वर्ष ६ मास तक मथुरा में शिक्षा पाने के पश्चात् आगरे की ओर पधार गये । चूंकि गर्मी हो गई थी, इसलिये अपना लिहाफ भी वहाँ मथुरा के मन्दिर में छोड़ गये । मन्दिर लक्ष्मीनारायण का दूसरा पुजारी घासीराम भी स्वामी जी के साथ आगरे गया था ।

(क्रमशः...)

—o—

www.thearyasamaj.org

वेद में आदर्श स्त्री शिक्षा

– डॉ० अशोक आर्य

वेद ने माता को निर्माता कहते हुए बताया है कि जो निर्माण का कार्य करती है, वही माता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक स्त्री के लिए वेद ने यज्ञादि कर्मो का करना अनिवार्य बताया है । निर्माण का कार्य और यज्ञादि करना यह दो मुख्य कार्य स्त्री के लिए बताये गए हैं और यह दोनों कार्य करने के लिए शिक्षा की आवश्यकता होतीहै । जब तक स्त्री शिक्षित नहीं होती तब तक वह कोई भी वेदोक्त कार्य नहीं कर सकती । कारण स्पष्ट है कि जब कुछ निर्माण करना है तो उसकी पूरी विधि का पता होना आवश्यक होता है जब यज्ञादि करना है तो उसके मन्त्रों का गायन भी आवश्यक होता है । यह दोनों कार्य ही शिक्षा के बिना सिद्ध नहीं किये जा सकते । इसलिए स्त्री शिक्षा आवश्यक होती है । वेद में दो सूक्त दिए गए हैं जिन्हें सरस्वती और उषा सूक्त के नाम से जाना जाता है । यह दोनों सूक्त स्त्री शिक्षा से ही सम्बन्धित हैं । इनमें स्त्री शिक्षा की अवधारणा पर बल दिया गया है । यथा :—

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती ।। ऋग्वेद १.३.११

सरस्वती शब्द जिसका अर्थ शिक्षा से लिया जाता है का निर्माण स्त्री - गतो धातु से होता है। इससे स्पष्ट है जो गति दे अर्थात् जो बुद्धि को गति दे, आगे ले जावे उसे ही हम सरस्वती या शिक्षा कहते हैं । व्याकरण शास्त्र इस अर्थ के लिए इस शब्द का तीन अर्थो में प्रयोग करता है । यथा :—

गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं, गमनं प्राप्तिश्चेती ।

अर्थात् मन्त्र में जो गति शब्द दिया है उसका अर्थ ज्ञान, गमन और प्राप्ति रूप में यह तीन अर्थ के लिए आते हैं ।

जब हम ज्ञान के अर्थ पर विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि वह स्त्री जो ज्ञानवती और विदुषी हो, उसे ही हम सरस्वती कह सकते हैं । मन्त्र बताता है कि स्त्री का विदुषी होना आवश्यक है । सरस्वती अर्थात् विदुषी स्त्री सदा ही सत्य और प्रिय वचनों का प्रयोग करती है । इसका भाव है कि वह स्वयं सदा सत्य का आचरण करते हुए दूसरों को भी सत्य का आचरण करने के लिए प्रेरित करती है । वह सदा प्रिय वचन, इस प्रकार के वचन बोलती है जो सबको प्रिय लगें और सबको यह उपदेश भी करती है कि वह जो भी बोले, इस प्रकार का ही बोले जिससे दूसरों को आनंद मिले, उनके सुखों की वृद्धि हो, किसी को इन वचनों के कारण कोई कष्ट न हो, सदा इस प्रकार के ही वचनों को बोलना चाहिए।

इस सबसे स्पष्ट होता है कि सरस्वती शब्द कोई अनायास ही प्रयोग में आने वाला शब्द नहीं है, यह उत्तम शिक्षा का द्योतक है । यह हमें प्रेरणा देता है कि हम न केवल स्वयं ही वेदोक्त सत्य शब्दों का, सर्वप्रिय वचनों का ही प्रयोग करें बल्कि सबको सत्य का, प्रिय वचनों का प्रयोग करने को प्रेरित करें । सत्य वचन को सुनकर, प्रिय वचन को सुनकर सदा आंनंद की अनुभूति होती है, सदा सुखों की

www.thearyasamaj.org

प्राप्ति होती है । फिर इसमें प्रमाद क्यों ? हम सदा सत्य व दूसरों को प्रिय लगने वाले वचनों को बोलकर सब ओर सुखों की वर्षा करें । अर्थात् इस प्रकार हम स्वयं भी सुखी हों और दूसरों को भी सुखी बनावें ।

इतना ही नहीं स्त्री एक उत्तम सलाहकार के रूप में जानी जाती है जो सदा ही न केवल अपने पति को ही बल्कि अपनी संतान को भी उत्तम सलाह देती है । केवल सलाह ही नहीं वह उन्हें उत्तम ज्ञान भी देती है । इस प्रकार वह स्वयं सत्य व प्रिय वचनों का आचरण करते हुए सदा उत्तम सलाह देने वाली, उत्तम ज्ञान देने वाली, सदा उत्तम व प्रिय वचनों को बोलते हुए दूसरों को भी सत्य प्रिय वचनों को बोलने के लिए प्रेरित करने वाली, ज्ञान को बांटने वाली यह स्त्री सब प्रकार के यज्ञों को उत्तमता से धारण करने वाली है तथा इन सब यज्ञों का वह विधिवत् अनुष्ठान करती है ।

यज्ञ क्या है ? इस विषय पर विचार करने पर हम पाते हैं कि स्वार्थ त्याग का नाम ही यज्ञ है, परोपकार का नाम ही यज्ञ है । दूसरों की सहायता करने का नाम ही यज्ञ है । अतः जब यह स्त्री सब प्रकार के यज्ञों का ठीक से अनुष्ठान करती है तो स्पष्ट है कि वह स्वार्थ से ऊपर होती है । त्याग की भावना उसकी सम्पत्ति होती है । परोपकार की इच्छा ही उसकी धरोहर होती है । वह अपने सब काम स्वार्थ से ऊपर उठकर त्याग तथा परोपकार की भावना से करती है । यह स्वार्थ त्याग अर्थात् त्याग की भावना तथा परोपकार ही नारी का मुख्य लक्षण है । हम देखते हैं कि प्रत्येक नारी अपने पति की प्रसन्नता के लिए अपने सुखों के त्याग की भी कभी चिंता नहीं करती, अपनी संतान के निर्माण के लिए सब प्रकार के त्याग करती है । यहाँ तक कि जब उसका बच्चा बिस्तर पर मूत्र त्याग देता है तो उसे सूखे पर लाकर स्वयं गीले स्थान पर सो जाती है, यह त्याग का एक बहुत बड़ा उदाहरण है, जो सब नारियाँ सदा से कर रही हैं । परोपकार कीं इतनी भावना उसमें भरी है कि स्वयं भूखे रह कर भी अपने पति तथा अपनी संतान का भरण पोषण करना अर्थात् पेट भरना अपना कर्तव्य समझती है और तब तक कुछ भी स्वयं ग्रहण नहीं करती जब तक कि पति व बच्चों का पेट न भर जावे । इस प्रकार स्वार्थ से ऊपर उठने वाली तथा परोपकार करने वाली इस वेद विदुषी देवी की सदा पूजा करते हैं, इसके उफकारों को हम सदा स्मरण रखते हैं ।

१०४, शिप्रा अपार्टमेंट
कौशाम्बी-२०१०१०
गाजियाबाद

दूरभाष : ०९७१८५२८०६८

—o—

शोक समाचार

बिठूर (कानपुर) गुरुकुल के आचार्य शंकर मित्र शास्त्री जी की पूज्या माता श्रीमती रामकली जी का १०३ वर्ष की आयु में ४ जनवरी २०१७ को प्रातः ३ बजे उनके निवास स्थान भरवारे, इलाहाबाद में हो गया है ।

'आर्य संसार परिवार' की ओर से पूज्या माता जी को हार्दिक श्रद्धाञ्जलि तथा उनकी आत्मा की शान्ति हेतु ईश्वर से प्रार्थना

www.thearyasamaj.org

(पूर्व अंक : आर्य संसार १९९५)

वैदिक अर्थव्यवस्था

– प्रो० उमाकान्त उपाध्याय

वेद अपौरुषेय हैं, ईश्वरीय ज्ञान हैं । अपूर्ण मानव को पूर्णता की ओर चलना, उसे सुख-सुविधा पहुँचना विद्या के उद्देश्यों में से एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है । मानव कई प्रकार के अभावों में ग्रस्त रहता है । भौतिक अभाव एक महत्वपूर्ण अभाव है । भौतिक अभाव चाहे भोजन के रूप में हो, या वस्त्र-अभाव के रूप में । भौतिक जीवन के अभावों की व्यवस्था, अभावों को दूर करने की व्यवस्था, अर्थव्यवस्था कहलाती है । आज का अर्थशास्त्र इसी व्यवस्था को इस रूप में उपस्थित करता है । मनुष्य के अभाव असीम हैं, आवश्यकताएँ एक के बाद दूसरी आती ही रहती हैं । इन असीम अभावों, असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये मनुष्य के पास, मानव समाज के पास, साधन सीमित हैं । इन सीमित साधनों के द्वारा असीम आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव नहीं है । अतः कम से कम साधनों का उपयोग करके अधिक से अधिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना ही अर्थ व्यवस्था है । किन्तु वैदिक अर्थ व्यवस्था में और अद्यतन अर्थव्यवस्था में कुछ मूलभूत अन्तर है । आज की अर्थव्यवस्था इन अभावों के दूरीकरण में आध्यात्मिकता को स्थान नहीं देती । अतः अद्यतन अर्थशास्त्र का आधार मानव की भौतिक सम्पन्नता मात्र है, उसमें अध्यात्म पर चारित्रिक सम्पन्नता के सम्पादन के लिए किसी व्यवस्था की अपेक्षा नहीं की जाती । Economic Principles are independent of spiritual considerations.

वैदिक व्यवस्था के आधार :- वैदिक अर्थव्यवस्था के आधार भूत उद्देश्य है । वैदिक अर्थव्यवस्था केवल सम्पन्नता या अभावों के दूरीकरण की व्यवस्था मात्र नहीं है । वैदिक शिक्षा के आधार पर यह निर्विवाद सत्य है कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य केवल भौतिक सम्पन्नता नहीं अपितु मोक्ष है – ''भोगापवर्गार्थं दृश्यम्''

यह संसार भोग के लिये है, भोग की व्यवस्था के लिए है । किन्तु भोग अपने में उद्देश्य नहीं है। भोग इसलिए है कि वह मोक्ष का सहयोगी बन सके । अतः वैदिक अर्थव्यवस्था का मूल आधार है–''पुरूषार्थ चतुष्टय'' की उपलब्धि । धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति के लिए ही अर्थव्यवस्था की आवश्यकता है ।

वैदिक परम्परा का यह सुनिश्चित सिद्धान्त सदा से मान्य रहा है कि – अर्थ शास्त्रातु बलवद्धर्म शास्त्रम्'' अर्थात् अर्थशास्त्र से धर्मशास्त्र अधिक बलवान है । इसका आशय यह हुआ कि अर्थशास्त्र की समस्त व्यवस्थाएँ धर्मशास्त्र के अनुकूल एवं धर्मशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुशासन में रहेगी । साथ ही पुरुषार्थ चतुष्टय का पारस्परिक समन्वय, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का समन्वय ही सारी सामाजिक व्यवस्थाओं का आधार है । अर्थशास्त्र भी उन्हीं व्यवस्थाओं में एक है ।

Economics / अर्थशास्त्र

यहाँ एक और तथ्य ध्यान में कर लेना चाहिए कि संस्कृत वाङ्मय में अर्थशास्त्र आज के

www.thearyasamaj.org

इकोनोमिक्स का पर्याय नहीं है । वहाँ सामान्य रूप में ''पृथिव्या लाभे पालने च'' पृथ्वी की उपलब्धि और पालन के लिए अर्थशास्त्र का विधान है । यहाँ हम संज्ञा प्रकरण या परिभाषा प्रकरण में न पड़कर, ''अर्थशास्त्र'' की इयत्ता पर विचार न करके केवल वैदिक अर्थ व्यवस्था पर कुछ विचार करना चाहते हैं।

संसार के इतिहास में कुछ लोगों ने अर्थ को अनर्थ का कारण बताया । कुछ लोगों ने धन की निन्दा इस रूप में की कि अर्थविद्या शैतान का उपदेश है । Economics is the gospel of mammon कुछ अन्य लोगों ने धन विज्ञान को Dismal Science कहा वैदिक व्यवस्था में धन की उपादेयता स्वीकार की गई है । यहाँ अर्थ अनर्थकारी न होकर पुरुषार्थ चतुष्टय में परिगणित है । यहाँ धन के लिए, ऐश्वर्य के लिए अनेक अनेक प्रार्थनाएँ की गई हैं —

''वयं स्याम पतयो रयीणाम्''—यजु० १०-२०

''स नो वसून्याभर''—यजु० १५-३

अग्ने नय सुपथा राये—यजु० ७-४३

रयि, बसु, श्री आदि के लिए प्रार्थनाओं की बहुलता है ।

अर्थ उपादेय है, अपेक्षित है, पुरुषार्थ चतुष्टय में इसकी गणना की गई है । अतः अर्थ की व्यवस्था वैदिक अर्थव्यवस्था पर कुछ विचार भी उपादेय है ।

अर्थ व्यवस्था का आधार वर्ण व्यवस्था :- वैदिक मान्यताओं की दृष्टि से विचार करने पर विदित होता है कि समग्र सामाजिक व्यवस्थाओं का आधार वर्णाश्रम व्यवस्था है । यह भी निर्विवाद ही स्वीकार करना चाहिए कि वर्ण व्यवस्था गुणकर्म से स्वीकरणीय है, जन्म से नहीं—चतुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः। भ०गी० ४-१३

पुनरपि ''वर्णोवृणीतेः''—''वृत्यावर्णः'' इत्यादि प्रमाण भरे पड़े हैं ।

अर्थव्यवस्था का भी आधार गुण कर्म-अनुसारी व्यवस्था ही हैं । ब्राह्मण और क्षत्रिय गुणकर्म से स्वीकारणीय हैं तो अर्थ का केन्द्र और मेरुदण्ड वैश्य भी गुणकर्म से ही स्वीकृत होगा, जन्म से नहीं । यह हमारे लिए कुछ अटपटा सा लगता है । हम एक विकृत सामाजिक व्यवस्था—अर्थव्यवस्था में पाले पोषे गये हैं, अतः हमारा अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में चिन्तन विकृत सा हो गया है । हमारी आर्थिक उपलब्धियों को हम दाय भाग के रूप में अपनी सन्तान को, सो भी विशेष रूप से, पुत्र को देने का ममत्व छोड़ने को प्रस्तुत नहीं होना चाहते, चाहे वह अयोग्य ही हो । यह व्यवस्था चिन्त्य है । वस्तुतः आर्थिक व्यवस्था कुछ इस रूप में समझ में आती है । हमारी आर्थिक उपलब्धियाँ दो भागों में विभक्त की जा सकती हैं ।

(१) आलम्बन या उपभोग द्रव्य । उदाहरण के लिए आवासनीय भवन, खाद्य सामग्री, परिधान-परिच्छद आदि ।

(२) उत्पादन द्रव्य – आज की भाषा में इसे पूँजी (Capital) कहते हैं । अनुमान है कि सम्पत्ति शब्द इस भावना के अधिक समीप है—सम्यद्यतेऽसौ (Having Growth Potentiality)

इनमें उपभोग द्रव्य सन्तानों को मिलें तो किसी आर्थिक अव्यवस्था की सृष्टि नहीं होती । किन्तु

www.thearyasamaj.org

उत्पादन द्रव्यों पर व्यक्ति का सीमित एवं सशर्ते (Conditional) ही अधिकार है । भूमि, खनिजद्रव्य आदि बहुत सारे पदार्थो को तो कौटिल्य आदि भी राजस्व ही मानते हैं, निजस्व नहीं । यद्यपि हम क्षणमात्र के लिए भी यह नहीं भूलना चाहते कि इस समय उपलब्ध अधिकांश कौटिल्य आदि अर्थ शास्त्रों का आधार केवल वैदिक अर्थव्यवस्था ही नहीं है ।

श्रुति व्यवस्था तथा स्मृति व्यवस्था – अन्य व्यवस्थाओं की तरह ही अर्थ व्यवस्था का एक श्रुति सम्मत स्वरूप है, और दूसरा स्मृति सम्मत । श्रौत व्यवस्थाएँ देश, काल, व्यक्ति, समाज निर्विशेष होती हैं । अर्थात् श्रुति प्रतिपादित व्यवस्थाएँ सभी देशो में, सभी कालों में, सभी समाजों और व्यक्तियों पर समान रूप से लागू होती हैं । दूसरी ओर स्मार्त व्यवस्थाएँ देश-काल समाज व्यक्ति भेद से भिन्न-भिन्न हो सकती है । उदाहरणार्थ ''बह्मचरेण कन्या युवानम् बिन्दते पतिम्'' यह श्रुति व्यवस्था है । सर्वत्र युवती कन्या का युवा पुरुष से विवाह हो । यह व्यक्ति देशकाल के संदर्भ में अपरिवर्तनीय व्यवस्था है । किन्तु ऊनषोड़षवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् वाली व्यवस्था श्रुति की नहीं है । किसी देश में अथवा सन्दर्भ विशेष में कन्याएँ १८-१९ वर्ष में विवाह योग्य हों । यह परिवर्तनीय अतएव, स्मार्त व्यवस्था है ।

इसी प्रकार अर्थव्यवस्था भी श्रौत और स्मार्त दोनों होती है । हम यहाँ वैदिक अर्थव्यवस्था अर्थात् श्रुति प्रतिपादित अर्थव्यवस्था की चर्चा कर रहे हैं । यह अर्थव्यवस्था देशकाल इत्यादि के सन्दर्भ में परिवर्तनीयता की आकांक्षा नहीं रखती । उदाहरणार्थ ''अक्षैर्मादीव्यः कृषिमित कृषस्व''—कृषि करो, जुआ मत खेलो, यह वैदिक व्यवस्था है और सन्दर्भ विशेष में अपरिवर्तनीय है ।

अर्थव्यवस्था के कुछ मुख्य आधार निम्न है :—

(१) सम्पन्नता (२) उत्पादन (३) विनिमय (४) वितरण (५) रोजगारी-कार्य में नियुक्ति

सम्पन्नता – वेद सम्पन्नता का उपदेश करते हैं । इस सम्बन्ध के सारे मन्त्रों या मन्त्रांशों को एकत्र करना न यहाँ सम्भव है और न अभीष्ट । एक दो उदाहरण ही पर्याप्त है :-

(१) उभा हि हस्ता वसुना पृणस्व ॥ — यजु० ५-१९

हे परमेश्वर ! हमारे दोनों हाथों को धन से भर दो

(२) वसोर्दाता वस्वदात ॥ — यजु० ४-१६

वसुदाता परमेश्वर हमें धन दें ।

सम्पन्नता की भावना के पोषक अनेकों उद्धरण वेदों में भरे मिलते हैं । वेद के शब्दों के अपने अलग ही आशय होते हैं । यहाँ वसु शब्द का प्रयोग हुआ है—वसवः वासयन्ति तस्मात् ॥

कृषि उत्पादन–उत्पादन में कृषि और उद्योग दो विशिष्ट क्षेत्र हैं । कृषि का उत्पादन मूलभूत उत्पादन है । कृषि का अन्नों का वेद में बहुत अधिक वर्णन है । यह स्मरण कराना आवश्यक जान पड़ता है कि वेद में अन्य विद्याओं के समान ही, कृषि विद्या भी बीज रूप से ही विद्यमान है । बीज रूप होकर भी वेद में वर्णित कृषि विज्ञान इतना प्रचुर और अद्भुत है कि बलात् हमारा ध्यान उधर खिंच जाता है ।

आज का कृषि विज्ञान केवल उत्पादन की अधिकता को ध्यान में रखता है, आज के उत्पादन का, अन्न फल मूल वनस्पतियों का पुरुषार्थ चतुष्टय से अधिक सम्पर्क नहीं है । अपने देश में भी हरित क्रांति (Green Revolution) और फिर हरिततर क्रान्ति (Greener Revolution) हुई । किन्तु सारा चिन्तन चेष्टा

www.thearyasamaj.org

उत्पादन की मात्रा (Quantity) बढ़ाने में लग रहे हैं, उसके आध्यात्मिक पक्ष को, गुण पक्ष को विचार अनुसंधान की परिधि से बाहर ही रखा जा रहा है । अन्न का मन पर, चरित्र पर, आध्यात्मिकता पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है । इस दृष्टि से देखने पर वेद का कृषि विज्ञान कुछ अलग प्रकार का संकेत करता है ।

प्रथम तथ्य जो ध्यानाकर्षण करता है, वह है अन्नों को यज्ञ से उपजाना—मन्त्रों पर मन्त्र अन्नों को गिनाते हुए कहते हैं—यज्ञेनकल्पन्ताम् । यज्ञ का, हवन होम का अन्न उत्पादन में क्या और कैसे उपयोग किया जाय । कृषि की इस बीज विद्या की तकनीक को विस्तार पूर्वक समझने, अनुसन्धान करने और क्रियान्वयन की अपेक्षा है । पौधे पत्तियों से खाद्य ग्रहण करते हैं । आज उर्वरक के घोलों का छिड़काव होता है । जिस समय तने बढ़ रहे होते हैं, उस समय का और प्रभाव है जो पौधे के तने पत्ती आदि पर पड़ता है । जब फूल आने लगते हैं, अन्न पड़ने लगते हैं, उस समय के छिड़काव से अन्न अधिक स्वस्थ, मोटे दलदार आदि होते हैं । यह मात्राधारित विचार हुआ । गुणाधारित विचार अलग है । किस तरह की तकनीक अन्न को बुद्धि, ब्रह्मचर्य, आध्यात्मिकता के लिए उपयोगी होगी । इस भूमिका में वेदों में किये गये निर्देश यज्ञेन कल्पन्ताम का अलग ही महत्व खड़ा हो जाता है ।

सुसस्यः कृषीस्कृधि । यजु० ४-१०

कृषिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। यजु० १८९

जैसे अनेकानेक मन्त्रों-मन्त्रांशों के साथ नवसस्येष्टि में विनियुक्त कई मन्त्र अलग ही महत्व के लगते हैं । उदाहरणार्थ एक मन्त्र निम्न प्रकार हैं —

घृतेन सीता मधुना समज्यततां विश्वेदैबैरनुमता मरुद्भिः। ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना स्मान्तसीते पयसाऽभ्यावतृत्स्व। यजु० १२-७०

मन्त्र के पूर्वांश का आशय यह जान पड़ता है कि हल की (सीता) कूड़ (Furrow) को घृत और मधु से इस प्रकार युक्त करना चाहिए जैसा कि ''विश्वैर्देवैः'' मरुद्भिः अनुमता विश्वदेव म मरुतो की अनुमति हो । सुस्पष्ट है कि ये विश्व देव मरुत प्रयुक्ति विद्या (Technical know-how) के आचार्य हैं । मरुत् शब्द बड़ा विचित्र है । यह विद्वानों, शिल्पियों आदि के लिये भी प्रयुक्त हुआ है ।

हल की कूड़ में नीम की खली तो पड़ती ही थी, अब उर्वरक भी पड़ रहे हैं । घी और मधु का प्रयोग किस रूप में, कब, कितना होगा, यह सब वेद की बीज-विद्या के पल्लवित करने का विषय है, जिसकी अपेक्षा कृषि वैज्ञानिकों से करनी चाहिये । यह देशकाल, मिट्टी, मौसम, सस्य इत्यादि की अपेक्षा से विभिन्न प्रकार से अपेक्षित हो सकता है ।

श्री स्वामी दयानन्द जी ने वैश्यों के लिए ''भूमि, बीज आदि के गुण जानना'' एवं खात (खाद) और भूमि की परीक्षा की बात लिखी है । आज की हरित क्रांति (Green Revolution) चरित्र और आध्यात्म का कितना विचार रखने की आवश्यकता समझती है, यह न कहना ही ठीक है । इसी सन्दर्भ में मनु की उक्ति—

''द्वजातीनामभक्ष्याणि-अमेध्य प्रभवाणि च'' का ध्यान करने से घृतमधु जैसी पवित्र सुमेध्य वस्तुओं का महत्व समझ में आता है ।

www.thearyasamaj.org

विनिमय – विनिमय के सम्बन्ध में बहुत सारे मन्त्र आते हैं । इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण का उहापोह पर्याप्त बड़ा कार्य है । फिर भी अथर्ववेद के तृतीय काण्ड का १५ वां सूक्त हमारा ध्यान आकृष्ट करता है । प्रथम मन्त्र में ही ऐश्वर्यदाता इन्द्र (इदि परमैश्वर्य) इन्द्र से अग्रगन्ता बनने की प्रार्थना करते हैं –

''इद्रमहं वणिजं चोदयामि स न एतु पुर एता नो अस्तु'' अथर्व० ३-१५

दूसरे मन्त्र में व्यापार में क्रय-विक्रय के द्वारा पृथ्वी और द्यौ मार्ग का अवलम्बन लेकर धन प्राप्त करने का वर्णन है –

''ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावा पृथिवी संचरन्ति ।

ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि ।।'' अथर्व० ३-१५-२

यहाँ क्रीत्वा धनमाहराणि पाठ है । किन्तु क्रय-विक्रय के सिद्धान्त आदि देशकाल आदि से सापेक्ष्य है, अतः स्मृतियों एवं नीति ग्रन्थों के विषय है श्रुति के नहीं ।

यहीं एक और मन्त्र द्रष्टव्य है –

''येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवाधनमिच्छमानः।''

तन्मे भूयो भवतु मा कनीयः.....।। अथर्व० ३-१५-४

यहाँ ''धनेन प्रपणं चरामि'' विनिमय का साधन धन को बताया गया है । पुनः धनेन धनमिच्छमानः में धन की उत्पादनशीलता (Producivity) का वर्णन है । साथ ही वह धन ''भूयो भवतु'', मा कनीयः अधिक हो, कम न हो ।

Medium of Exchange
विनिमय का माध्यम

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि धन केवल धन के लिए नहीं, अपितु उत्पादन विनिमय के सहयोग के लिए है । एक ओर ''विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु'' अर्थात् प्रत्येक विक्रीत द्रव्य में लाभ हो, साथ ही ''हव्यं जुषेयाम्'' और ''नो अस्तु चरितमुत्थतं च'' हम इस लाभ को हव्य समझकर सेवन करें और हमारे चरित्र का उत्थान हो ।

यह समग्र भावना Wealth for Welfare धन कल्याण के लिए वाले आदर्श से अधिक परिपूर्णता की ओर बढ़ा देती है ।

वितरण – वितरण के सम्बन्ध में भी वेद में अनेकत्र वर्णन मिलते है । यजुर्वेद का तीसवाँ अध्याय पूरा वितरण की व्यवस्था में विचित्र ढंग से उपस्थित है । तीन प्रार्थना मन्त्रों के पश्चात् चतुर्थ मन्त्र आता है–

''विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः'' यजु० ३०-४

यहाँ विभाजनकर्ता का आवाहन है और साथ ही ''ब्रह्मणे ब्रह्मणम्'' इत्यादि कार्यपरक विभाग के साथ ही विभाजन व्यक्तिशः (Individual) न होकर कार्यानुसारी (Functional) है ।

इसी संदर्भ में ऋग्वेद के दशम् मण्डल का उद्धरण द्रष्टव्य है –

यह श्रमानुसारी विभाजन उत्पादन के आधार पर है । इस प्रसंग में आज का आकर्षक नारा भी तुलना करने योग्य हैं – From Every one according to his capacity to every one according to his need.

www.thearyasamaj.org

वेद की व्यवस्था To every one according to his work श्रमदाय के रूप में प्रतीत होती है ।

विभाजन के सम्बन्ध में जब हम श्रमदाय-श्रम देय की बात को विचारते हैं तो ध्यान आता है कि श्रमिकों के मसीहा कार्ल मार्क्स और उनके हिमायती साम्यवादी हैं । किन्तु वेद में श्रमदाय का निर्देश श्रमिक को उसके श्रम के परिवर्तन में उचित अंश दिलाने का निर्देश है ।

धनेन धनमिच्छ मानः, धन से धन की इच्छा, साथ ही श्रमस्य दायम्, श्रम का दाय, श्रमिक को देयः ये सब निर्देश एक आकांक्षा छोड़ जाते हैं कि इनका विभाजन किस अनुपात में होना उचित है । बिना किसी अनधिकार चेष्टा के, हम इतना कहने की स्थिति में हैं कि पूंजी हो या श्रम सबको उनका अंश मिलना चाहिये और उनका शोषण नहीं होना चाहिए ।

विभाजन की रूपरेखा देश, काल, परिस्थिति की आकांक्षा रखने के कारण स्मृति शास्त्रों का विषय हो सकती है तथापि अथर्व वेद का एक मन्त्र विचारणीय है —

यद् राजानोविभजन्त इष्टा पूर्तस्य षोडशं यमस्याभी सभासदः
अविस्तस्मात्प्रमुञ्चति दन्तः शितियात्स्वधा।। अथर्व ३-२९-१

यहां ''राजानः विभजन्ते'' यह निर्देश विभाजन की व्यवस्था का अधिकार राजा का है, ऐसा संकेत करता है । साथ ही वेद का राजा King या Crown नहीं है, यह तो कहने की भी आवश्कता नहीं है ।

इस मन्त्र में इष्टा पूर्तस्य षोडशं यदि कर व्यवस्था का अंश निर्देश कर रहा है, तो इस सम्बन्ध में अधिक ऊहापोह एवं चिन्तन की आकांक्षा है ।

उपभोग की समानता – वेद मानव मात्र में समानता की भावना का उपदेश करते हैं । न कोई ज्येष्ठ न कनिष्ठ—''अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः।'' वैदिक अर्थ व्यवस्था में खान-पान, उपभोग व्यवहार की समानता का सिद्धान्त बताया गया है । अथर्ववेद का एक मंत्र है —

समानी प्रपा सहवोऽन्न भागः समाने,
योक्त्रे सह वो युनजिम।
सम्यञ्चोऽग्नि सपर्यतारा नाभिमिवातभितः।। अथर्व० ३-३०-६

मन्त्र का प्रथम अंश है समानी प्रपा सहवो भागः तुम्हारा खान-पान समान हो । यहां विशेष ध्यान देने योग्य अंश है अन्न भागः अन्न भाग, खाद्य भाग, उपभोग भाग, सब कुछ समान हो । ऋषि स्वामी दयानन्द जी ने गुरुकुलों में विद्यार्थियों के खान-पान, रहन-सहन, वस्त्र, आभरण आदि की समानता की व्यवस्था बताई है । यहाँ तो मनुष्य मात्र आलम्बन पदार्थों के उपभोग में समानता के अधिकारी हैं । साम्य का यह स्वरूप साम्यवादी देशों के लिये भी अनुकरणीय है ।

मन्त्र का द्वितीय खण्ड और भी ध्यान देने योग्य हैं —

नियोजन : रोजगारी का अधिकार
(Right to Employment)

आज के इस प्रगतिशील युग में मौलिक अधिकारों (Fundamental Rights) की बड़ी चर्चा है । आज इस युग में भी रोजगारी का अधिकार वास्तविकता का रूप नहीं ले सका है । किन्तु वेद इस दिशा

www.thearyasamaj.org

में सुस्पष्ट, निर्देश करते हैं कि कार्य के नियोजन में मनुष्य मात्र को समान रूप से नियुक्त किया जाना चाहिए—''समाने योक्त्रे सहवो युनज्मि'' समान योक्त्र में समान भाव से नियुक्त करता हूँ। यह योक्त्र क्या हुआ ? योक्त्र का प्रचलित अर्थ तो जुआ-जोटा आदि हैं जिसमें बैल, घोड़े आदि जोते जाते हैं। वहाँ मनुष्यों को समान योक्त्र में साथ-साथ युक्त-नियुक्त (युजिर योगे) किया जा रहा है।

योक्त्र को व्याकरण की दृष्टि से युजिर-योगे इसी धातु से करण में ष्ट्रन प्रत्यय करके निष्पन्न करते हैं।

''दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिच मिहतदशनहः करणे'' — अष्टा० ३-२-१८२

''युनक्ति जनेन इति योक्त्रम्'' जिस रस्सी से बैल घोड़े जोते जाते हैं, वह योक्त्र है, इसी प्रकार जिस कार्य जिस दायित्व में मनुष्य युक्त-नियुक्त किये जाते हैं, वह भी योक्तर हुआ।

अगला भाग है —

''सम्यञ्चः अग्निं सपर्यत'' कार्य का जो उद्देश्य है वही अग्नि है। सब मिलकर समान रूप से उस अग्नि को उपासना करें।

''अयं वै लोकोऽग्निः'' श-१४-९-१-१४

अग्नर्वै यज्ञः श-३४-१९

इस अर्थ में भी यह अग्नि शब्द अधिक भाव गर्भित हैं।

अथर्ववेद के इसी सूक्त में, इसी प्रसंग में कुछ एक शब्द इस भाव को कुछ और निखार देते हैं—

सध्रीचीनाः, संराधयन्तः, सधुरा चरन्तः

ये शब्द पांचवें मन्त्र में हैं। सबका भाव मिलकर एक ही उद्देश्य (Goal) के लिए सामूहिक रूप से कार्य करना है। अन्त में प्रसिद्ध विद्वान् श्री वीरसेनजी वेदश्रमी के ग्रन्थ वैदिक सम्पदा से एक उद्धरण द्रष्टव्य है। इन उद्योगों में से कुछ उद्योग केवल व्यक्तिगत हैं। कुछ व्यक्तिगत एवं सामूहिक हैं। कुछ सामूहिक एवं राज्याश्रित सम्मिलित भी हैं और कुछ केवल राज्याश्रित हैं। अतः समाज को राष्ट्र के रूप में उद्योग-धन्धें की रक्षा, वृद्धि, उनके लिए कुशल व्यक्ति तैयार करने की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। वैदिक सम्पदा पृ० १७०

वैदिक अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में निश्चित रूप से एक समन्वित व्यवस्था की गवेषणा-अनुसंधान स्पष्टीकरण आदि बहुत आवश्यक है। आज संसार में प्रचलित अर्थ व्यवस्था अपने पूंजीवादी स्वरूप साम्यवादी स्वरूप में और दोनों के मिश्रित रूप में भी बहुत उन्नत विस्तृत एवं सफल सिद्ध हो रही है। आज जनकल्याण की नीतियां, श्रम पूंजी के सम्बन्ध, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, सभी पर्याप्त उन्नत है। इसी के साथ अद्यतन विज्ञान की उन्नति, प्रयुक्ति विद्या का विस्तार पर्याप्त सन्तोष जनक है। इसी के साथ इन सबका सहयोग पूर्ण सम्बन्धित रूप मानव समाज की अच्छी प्रशंसनीय सेवा कर रहा है। मनुष्य की आयु बढ़ गई है, मृत्यु दर घट गई है। सम्पन्नता समृद्धि निकट ज्ञात इतिहास में अप्रतिम रूप से उन्नत हुई है। किन्तु चरित्र, सदाचार, अध्यात्म आदि की उपेक्षा कुछ कम चिन्ता का विषय नहीं है।

भगवान् राम के राज्य के वर्णन में एक प्रसंग आता है —

पहष्ट मुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः।

www.thearyasamaj.org

निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभय वर्जितः।।
न पुत्र मरणं केचिद् द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित्।
नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः।।
न चाग्निजं भयं किंचिन्नाप्सु भज्जन्ति जन्तवः।
न वातजं भयं किं चिन्नापि ज्वर कृतं तथा ।।
न चापि क्षुद्रभयं तत्र न तस्कर भयं तथा ।
नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्य युतानि च ।। —बा०रा०वा० १-९०-९३

आज के विश्व की बहुविध उपलब्धियों के परिप्रेक्ष में यह वर्णन गपोड़ा नहीं अपितु सत्य उद्भासित होने लगा है । आज का उन्नततम राष्ट्र भी इन उपलब्धियों का दावा नहीं कर पा रहा है । हो सकता है कि आगामी २५-५० वर्षों के पश्चात् इस वर्णन का भौतिक पक्ष, शुद्ध समृद्धि पक्ष प्रत्यक्ष आँखों के सामने उतर आये । फिर भी इसका चारित्रिक एवं अध्यात्म पक्ष तो सामने नहीं आता । अतः इस सन्दर्भ में उस व्यवस्था का अन्वेषण करना हम सबका कर्त्तव्य है जिसकी फलश्रुति राम राज्य की उपलब्धि के रूप में अद्यतन चिन्तनशील व्यक्ति को अपनी विशेषता के कारण आकृष्ट कर रही है । इस दृष्टि से भी वैदिक अर्थव्यवस्था पर अन्वेषण चिन्तन-मनन, क्रियान्वयन संसार के कल्याण के लिए अति आवश्यक है ।

(पृष्ठ २२ का शेषांश)

व्यवस्थाओं की अवहेलना की जा रही है । प्रथम आश्रम के लिए बच्चों को गुरुकुल नहीं भेजा जाता है। गृहस्थ में भी पंच महायज्ञों का पालन नहीं होता और मनुष्य वानप्रस्थ व सन्यास में न जाकर गृहस्थ में ही अपना पूरा जीवन व्यतीत कर देता है । दोनों व्यवस्थाओं का यदि सुचारू रूप से पालन किया जाये तो कोई कारण नहीं कि मनुष्य का जीवन सुखी न बने और वह मोक्ष की ओर अग्रसर न हो ।

ये दोनों व्यवस्थाएँ समय के प्रभाव से काफी कमजोर हो गई थीं तब ईश्वर की अपार कृपा से सन् १८२४ में गुजरात प्रान्त के टंकारा ग्राम में एक महामानव का जन्म हुआ जिसका बचपन का नाम मूलशंकर था । वह २२ वर्ष की आयु में सच्चे शिव की खोज में घर से निकल पड़ा और संन्यासी वेश में स्वामी पूर्णानन्द से स्वामी दयानन्द सरस्वती नाम रखवा कर अनेक वर्षों तक पूरे भारत का भ्रमण करके अपने तपस्वी जीवन में अनेकों दुःखों, कष्टों व अभावों को सहते हुए किसी के बतलाने पर सद्गुरु विरजानन्द के पास मथुरा जा पहुँचे । वहाँ तीन वर्ष सद्गुरु की गोद में बैठकर वेदाध्ययन किया और फिर गुरु के आदेश से ही अपने पूरे जीवन वेदों का प्रचार करके विश्व में पुनः वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रचलन किया । साथ ही विश्व से अज्ञान, अन्धविश्वास व पाखण्ड को मिटाने का पूरा प्रयत्न किया और काफी हद तक सफलता भी मिली । इन कार्यों को करके योगीराज देव दयानन्द ने हमारे ऊपर जो उपकार किया है, उसके लिए हम महर्षि दयानन्द के सदा ऋणी बने रहेंगे ।

दूरभाष : ०३३-२२१८-३८२५
मोबाईल : ९८३०१३५७९४

C/o गोविन्दराम आर्य एण्ड सन्स
१८०, महात्मा गाँधी रोड,
२ तल्ला, कोलकाता-७

www.thearyasamaj.org

वेदवाणी के ज्ञान से लाभ

– मृदुला अग्रवाल

''वेदवाणी''—ईश्वर ने वेदवेत्ताओं को संसार के सुख के लिये निधि के समान सौंपी है । मनुष्य उस वेद के द्वारा परमाणु से लेकर ईश्वर पर्यन्त खोज करके ज्ञान प्राप्त करे ।

''वेदवाणियाँ न्यायकारी परमेश्वर की प्राप्ति के लिये उस ज्ञान का प्रकाश करती हैं जो सर्वत्र विद्यमान है ।'' सामवेद, मन्त्र-१४९१॥

''ऋषियों ने वेद को मनन करके माना है कि वेद विद्या के अभ्यास से संसार के सब मनुष्य और सन्तान उत्तम होते हैं ।''

—अथर्ववेद, काण्ड-१२, सूक्त-४, मन्त्र-१॥

वैदिक उपदेश से सबके सर्वस्व की रक्षा होती है । वेदवाणी की प्रवृत्ति से संसार के सब प्राणी आनन्दित होते हैं । परोपकारी ब्रह्मजिज्ञासु लोग वेदवाणी को प्राप्त करके संसार का सुधार करते हैं।

जो वेदवाणी प्रयत्न के साथ तप (ब्रह्मचर्य आदि अनुष्ठान) के साथ उत्पन्न की गई है, जो सत्यज्ञान से एवं यथार्थ नियम से स्वीकार की गई है, वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) जिस वेदवाणी के प्राप्तियोग्य स्थान हैं, ब्रह्माण्ड को जानने वाला ईश्वर जिसका स्वामी है, जो वेदवाणी अपनी धारणशक्ति से सब ओर धारण की गई है, श्रद्धा एवं ईश्वर-विश्वास से अति दृढ़ की गई है, दीक्षा (नियम, व्रत, संस्कार) आदि से रक्षा की गई है, यज्ञ (विद्वानों का सत्कार, शिल्प, विद्या, अग्निहोत्र और शुभ गुणों के दान) में प्रतिष्ठा की गई है, जिसका यह संसार स्थिति-स्थान है, उस वेदवाणी की प्राप्ति से और उसका सहारा लेकर जितेन्द्रिय पुरुष आनन्द भी पाते हैं एवं संसार में प्रतिष्ठित भी होते हैं । परन्तु जो ब्राह्मण व्रत से, ब्रह्मचर्य से वेदवाणी के लाभों और उपदेशों को समझ लेता है, उस ब्राह्मण को जो लोग सताते हैं, उनसे वेदवाणी को छीनते हैं, ऐसे व्यक्तियों की सुकीर्ति चली जाती है, उनकी वीरता एवं मंगलमयी लक्ष्मी—श्री भी चली जाती है । शान्तिकारक वेदविद्या के रोक देने से अधर्म और अज्ञान बढ़ता है । विद्या के रोक से अविद्या के कारण विपत्तियाँ फैलती है। संसार में बड़े-बड़े उपद्रव फैलते हैं, घोर पाप छा जाता है एवं सब प्राणी कष्ट पाते हैं ।

वेदवाणी की प्रवृत्ति से जब वेदों का विज्ञान बढ़ता है, जैसे-जैसे मनुष्य उग्र तप करके वेद का प्रकाश करते हैं, वैसे-वैसे भूल करने वाले पाखण्डियों का नाश होता जाता है, संसार में पापियों का नाश और धर्मात्माओं को आनन्द का प्रकाश प्राप्त होता है । वेदवाणी के शुभ गुण प्रकट होने पर दुष्टों की दुष्टता सर्वथा नष्ट हो जाती है । सब में उत्तम विद्वान् एवं सद्गुण प्रचारक जन को चाहिये कि वे मनुष्यों को वेदवाणी का दान करके संसार का उपकार करें । मनुष्य सब गुणों की खान वेदवाणी के अभ्यास से अपनी सब कामनाएँ पूरी करता है । वेदवाणी की प्रवृत्ति से संसार में ऐश्वर्य बढ़ते हैं, धन-सम्पत्ति की रक्षा और वृद्धि होती है । जहाँ राजा विद्वानों का मान-सत्कार से वेदविद्या का प्रचार एवं

www.thearyasamaj.org

प्रकाश करता है, वह राज्य चिरस्थायी होता है । सदा से विद्वानों ने अनेक शक्तियों की कल्पना करके यही निश्चय किया है कि संसार में शिष्टों की वृद्धि करने वाली और दुष्टों को ताड़ने वाली इस वेदवाणी के तुल्य कोई शक्ति नहीं है । प्रतिदिन की होने वाली प्रातःबेला में स्मरण की जानेवाली वेदवाणी के समान परमेश्वर मनुष्यों के ध्यान, मनन आदि कार्यों से जाना जाता है । वेदवाणी के हितकारी ज्ञान का उपदेश करने वाला एकमात्र परमात्मा ही है । वही पृथिवी और अन्तरिक्ष में छिपे हुए प्रकाशमान तीसरे द्युलोक को भी भली-भांति धारण कर परमपद को प्राप्त कराता है । ब्रह्मचर्य के प्रभाव से मनुष्य उच्च होकर वेदवाणी जानकर पृथिवी की रक्षा कर सकता है, क्योंकि पृथिवी को पालनेवाली वेदवाणी ही होती है । इसीलिये उसका नाम ''वशा'' वश में करने वाली है । ''वशा'' अर्थात् कामना योग्य वेदवाणी को निश्चय करके मनुष्य नीति, यथार्थ ज्ञान, तीन उद्योगों (ईश्वर के कर्म, उपासना और ज्ञान) आदि को वेदज्ञ ब्राह्मणों से प्राप्त करके अपनी उन्नति करे एवं संसार को प्रकाशित करे । जो मनुष्य वेदवाणियों के नियमों पर चलकर एवं परमात्मा के दिव्यस्वरूप की भक्ति करके मोक्ष सुख भी पाता है एवं असत्य भी नहीं बोलता, उसे भौतिक ओषधियों की आवश्यकता नहीं होती । सर्वव्यापक परमात्मा को साक्षी करके श्रेष्ठ गुणवाली वेदवाणी का उपार्जन करके सब विघ्नों को अपने जीवन से हटा सकता है । स्वयं वेदवाणी के ज्ञान से लाभ प्राप्त करके मोक्षज्ञान और तत्वज्ञानों को जानता चला जाता है । ''अघ्न्ये पदवीर्मव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या'' मनुष्यों को चाहिये कि जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी होकर बलवती वेदवाणी को प्राप्त करके संसार में प्रतिष्ठित होवे ।

१९-सी, सरत बोस रोड़
कोलकाता-७०००२०
मो० ९८३६८४१०५१

(पृष्ठ २४ का शेषांश)

वल्लभभाई पटेल ने मुक्तकंठ से घोषणा की है — ''यदि स्वामीजी न होते, तो हिंदुस्तान की क्या हालत होती, इसकी कल्पना भी कठिन थी । शताब्दियों के बाद ही ऐसे महापुरूष मिलते हैं । समाज में जब बुराइयाँ घर कर जाती है, तब ईश्वर ऐसी विभूतियों को भेजता है । ऐसे महापुरूष कभी मरते नहीं हैं, वे अमर रहते हैं ।'' वस्तुतः उनके अमृत-ज्योति के प्राणमय के प्राविधिक अरूणाभ आलोक से निगम-आगम ऊर्ध्व गरिमा से दमक उठा और उनकी कमनीय कलनिनाद से वर्तमान जीवन भव्य भविष्य मुखरित-स्पंदित होता रहेंगा । क्योंकि वे भारतीय सामासिक संस्कृति, वैज्ञानिक अध्यात्मवाद, आत्मिक अभिनव चेतना की मंगलकारक इकाई के महनीय सूत्रधार थे । उनकी सृजनात्मक साहित्यिक अवदान भारतीय-साहित्य और वैदिक दर्शन के विकास में अप्रतिम है । किमधिकम् ।

हिंदी अध्यापक,
वेदसदन, अमरपुर, पो०-पथरा,
मो० ९१६२२०८००५ जिला-गोड्डा-८१४१३३ (झारखंड)

www.thearyasamaj.org

''वर्णाश्रम व्यवस्था समाज व राष्ट्र के लिए कितनी हितकर''

– श्री खुशहाल चन्द्र आर्य

हमारे ऋषि, मुनियों ने वर्ण तथा आश्रम व्यवस्था बहुत ही सोच समझ कर बनाई थी । ये दोनों ही व्यवस्था समाज व राष्ट्र की उन्नति व समृद्धशाली बनाने में काफी सहायक सिद्ध हुई है । इन दोनों व्यवस्थाओं का यदि ठीक ढंग से सदुपयोग किया जावे तो ये समाज व राष्ट्र के लिए काफी उपयोगी हो सकती है । जैसे भारत में महाभारत के विश्वयुद्ध तक लाभकारी होती रही है । वर्ण व्यवस्था समाज व राष्ट्र के कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए कार्य विभाजन है । यानी प्रत्येक वर्ण के अपने अलग-अलग कार्य जो उनके जिम्मे किया है, उनको यदि वे अपने कर्त्तव्य भाव से करते हैं तो समाज व देश के लिए बड़े सहायक व हितकारी सिद्ध हो सकते हैं । अन्यथा वे समाज व राष्ट्र के लिए घातक भी सिद्ध हो जाते हैं । जैसे अभी हो रहे हैं ।

वर्ण चार है (१) ब्राह्मण (२) क्षत्रिय (३) वैश्य (४) शूद्र । प्रत्येक समाज व राष्ट्र में तीन दोष या कमजोरियाँ होती हैं । (१) अज्ञान (२) अन्याय (३) अभाव । प्रथम तीन वर्ण क्रमशः इन तीन दोषों को मिटाने यानी दूर करने के लिये बनाये गये थे । ब्राह्मण वेद-ज्ञान द्वारा अज्ञान को दूर करता था । क्षत्रिय अपने बल व साहस के द्वारा अन्याय को दूर करता था । वैश्य अपने व्यापार व कृषि द्वारा अभाव को दूर करता था । इस प्रकार इन तीनों की प्रत्येक समाज व राष्ट्र को बड़ी आवश्यकता होती थी । ये तीनों वर्ण अपने कार्य व कर्त्तव्य का सुचारू रूप से पालन करते रहें इसलिए उनकी सेवा के लिए शूद्र वर्ण बनाया था । शूद्र वह होता है जो पढ़ाने से भी न पढ़े, ऐसा व्यक्ति जिसमें अज्ञान, अन्याय व प्रभाव को दूर करने की क्षमता न हो उस व्यक्ति को पहले तीन वर्णों की सेवा करने का भार दिया गया था ताकि वे वर्ण निश्चिन्त होकर अपने कर्तव्य को सुचारू रूप से पूर्ण कर सकें । यह वर्ण-व्यवस्था समाज व राष्ट्र का कार्य सुचारू रूप से चलता रहें, उसमें कोई विघ्न-बाधा न आवे इसलिए बनाई गई थी । चारों वर्णों में कोई छोटा-बड़ा नहीं था । सभी समाज व राष्ट्र के समान अंग थे । सभी को धार्मिक, सामाजिक व अन्य कार्य करने की बराबर छूट थी यानी सब स्वतंत्र थे । जैसे किसी बारात को भोजन खिलाने के लिए सुन्दर व्यवस्था बनाये रखने के लिए किन्हीं चार व्यक्तियों को जिम्मा दिया जाता है । एक व्यक्ति हल्वा परोसता है, एक व्यक्ति पूड़ी, एक व्यक्ति पानी और एक व्यक्ति साग परोसता है । ये सभी काम जरूरी है । इनमें कोई काम छोटा-बड़ा नहीं है । बारात को सुचारू रूप से भोजन करवाने के बाद वे चारों व्यक्ति एक साथ बैठकर भोजन करते हैं और इनका भोजन भी समान होता है । इसी प्रकार चारों वर्ण भी समान हैं । उनको धार्मिक, सामाजिक व अन्य कार्यों को करने की समान सुविधाएँ होनी चाहिए ।

महाभारत के विश्वव्यापी युद्ध में सभी योद्धा, धर्माचार्य, विद्वान् तथा राजनैतिज्ञ समाप्त हो जाने से स्वार्थी व कम पढ़े लिखे ब्राह्मण, विद्वान् बन गये और उन्होंने अपना स्वार्थ सिद्ध करने तथा अपना पेट भरने के लिए अनेक मत-मतान्तर चला दिये और वर्ण जो कर्म पर निर्धारित थे उनको जन्म से जाति के रूप में मानना आरम्भ कर दिया और उन्होंने प्रचलित कर दिया कि ब्राह्मण के घर पैदा हुआ बालक

www.thearyasamaj.org

ब्राह्मण ही होगा, चाहे वह पढ़ा-लिखा हो या अनपढ़ हो । अन्य जाति के लोग उसका ब्राह्मण समझकर ही सम्मान करेंगे । इससे हानि यह हुई कि ब्राह्मणों ने स्वयं ने भी वेदों को पढ़ना छोड़ दिया और दूसरी जाति के लोगों से भी वेद पढ़ने का अधिकार छीन लिया, यहाँ तक कि स्त्रियों व शूद्रों को तो वेद पढ़ना पाप समझा जाने लगा । इससे वेद-ज्ञान प्रायः लुप्त हो गया, जिससे अनेक प्रकार के अन्धविश्वास व पाखण्ड चल पड़े । जैसे मूर्ति-पूजा, अवतारवाद, अनेक देवी-देवताओं की पूजा, श्राद्ध-तर्पण, भूत-प्रेत, गण्डा-डोरी आदि प्रचलित हो गये, जिससे सही ईश्वर की उपासना, यज्ञ, सत्संग आदि छोड़ दिये और सभी वर्ण वाले अपना-अपना कर्त्तव्य छोड़कर केवल अपने स्वार्थ में ही लिप्त हो गये, उससे केवल भारत ही नहीं बल्कि विश्व के सभी लोग पतन की ओर अग्रसर हो गये जिससे आज मानव-मात्र की स्थिति बड़ी नाजुक हो गई है ।

वर्णों जैसी हालत आश्रमों की है । आश्रम भी हमारे ऋषि-मुनियों ने मनुष्य को व्यक्तिगत रूप में पूर्ण बलशाली, विद्वान्, चरित्रवान व पूर्ण मानव यानी जिसमें मानवता के सभी गुण, दया, परोपकार, साहस, उदारता, सहनशीलता आदि हो, ऐसा मानव बनाने की व्यवस्था की थी । इसके लिए मनुष्य की आयु एक सौ वर्ष की निर्धारित करके, उसको चार भागों में बांटा था । इसके आरम्भ के पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्य आश्रम कहलाता है । जिसमें वह गुरुकुल में पढ़कर बल व बुद्धि से पूर्ण व सुदृढ़ होता है । फिर पचीस से पचास वर्ष तक गृहस्थ आश्रम होता है । इसमें वह अच्छी सन्तान पैदा करके देश को सुदृढ़ बनाता है और गृहस्थ का पालन करते हुए बाकी तीन आश्रमों को भी आश्रय देता है इसीलिए यह आश्रम जेष्ठ व श्रेष्ठ माना गया है । तीसरा आश्रम वानप्रस्थ का है । यह पचास से पचहत्तर वर्ष तक का होता है । इसमें मनुष्य स्वयं एकला या अपनी धर्मपत्नी को साथ लेकर समाज की सेवा निःशुल्क करता है और समाज उसका जीवन यापन करता है । वह समाज को हर प्रकार की सेवा बिना वेतन लिए कर्त्तव्य भाव से कहता है । जैसे गुरुकुलों का आचार्य बन कर, आर्य समाजों का पुरोहित बनकर या गऊशाला, अनाथालय व औषधालय की सेवा करता है । इस आश्रम के होने से देश की सभी सेवा संस्थआएँ सुचारू रूप से चलेगी और राष्ट्र दिनों दिन उन्नति करेगा । चौथा आश्रम पचहत्तर से एक सौ वर्ष तक का है, इसे संन्यास आश्रम कहते हैं । इसमें मनुष्य भगवे वस्त्र (जो त्याग का प्रतीक है) धारण करके पूर्ण रूप से परोपकारी कार्यों में लग जाता है । उसके लिए पूरा विश्व एक परिवार हो जाता है और पूरा विश्व उसकी सन्तान के समान हो जाता है । वह एक स्थान पर न रहकर ग्राम-ग्राम व घर-घर जाकर वेद-प्रचार करता है और गृहस्थ उनका आदर-सत्कार करता है । इस प्रकार ये चारों आश्रम मनुष्य के जीवन का विस्तार बढ़ाते हैं । ब्रह्मचर्य में व्यक्ति अपने व्यक्तिगत बल और बुद्धि को बढ़ाकर पूर्ण यौवन प्राप्त करता है । गृहस्थ में व्यक्ति अपने स्वयं का ध्यान रखते हुए परिवार व समाज का भी ध्यान रखता है । इस प्रकार उसका जीवन व्यक्तिगत से समाज तक हो गया । वानप्रस्थ में व्यक्ति परिवार व समाज से उठकर पूरे राष्ट्र का हो जाता है इस प्रकार उसका विस्तार समाज से राष्ट्र तक का हो गया । संन्यास में व्यक्ति राष्ट्र से पूरे विश्व का हो जाता है । इस प्रकार आश्रम व्यवस्था विश्व शान्ति और मनुष्य की उन्नति व विकास की बहुत सुन्दर व्यवस्था है । इन व्यवस्थाओं को कर्त्तव्य भाव से सुचारू रूप से करने से मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है । परन्तु महाभारत के बाद इन चारों

(शेष पृष्ठ १८ पर)

www.thearyasamaj.org

महर्षि दयानंद : प्रातिभ व्यक्तित्व

– श्री परीक्षित मण्डल 'प्रेमी'

दुनिया चाहे मुक्तात्मा के अवतारों का एहसान न माने पर वेदार्थ के प्रमाण पुरूष तथा आध्यात्मिक आन्वीक्षिकी के मर्मज्ञ मनीषी महर्षि दयानन्द सरस्वती के ज्योतिर्वाहक मंगल कारक तपस्तेज पुण्यों से उऋण नहीं हो सकती । सांस्कृतिक विघटन, राजनैतिक पराभव, वेदविभाहीन अध्यात्म और सामाजिक विषमता की विषादपूर्ण कुहेलिका में वैदिक वाग्विभूति के श्लाघनीय स्वामी दयानन्द सरस्वती का अवतरण १२ फरवरी, अट्ठारह सौ चौबीस को न हुआ होता तो शस्य-श्यामला अध्यात्म प्रवण मा वसुंधरा कभी की मर चुकी होती । परम साध्वी सावित्री ने यमराज से द्युमत्सेन — आत्मज सत्यवान् के प्राण वापस लिए थे, पर संबुद्ध, आप्तपुरुष स्वामी दयानंद सरस्वती के सत्य, शिव, चित् शक्ति समन्वित विराट् व्यंक्तित्व ने प्राणोज्वल विभव वैभवों को बिखरने वाली रत्नगर्भा धरती के विभावान वैभव एवं आनंद मधुरिमा मज्जित प्राणों को सुरक्षित रखा था । वे मंगलमय तीग्मतेज तन से संसार थे और हिरण्यमय मन से अभिदीप्त सांस्कृतिक पीठिका के निःसीम अमंदशांति के प्रतिमान थे तथा वे भगवत प्रकाश से प्रदीप्तमान परमभगवत पुरुष थे । भारतीय धर्म साधना के अनुत्तरित, कलुषित मन को वेदालोक से ज्योतिर्मय किया और विभिन्न मत-तिमिर की जटिल समस्याओं को विखंडितकर श्रुति, वेदांत, उपनिषद्, स्मृति सम्मत समाधान प्रस्तुत किया । अतः उन्हें महर्षि की उपाधि से विभूषित किया गया । उन्होंने सर्वतोभावेन निःस्वार्थ समर्पण की जो अमृत-ज्योति की स्वर्णारूप किरणों की देदीप्यमान दीप्तशिखा प्रज्वलित की, वह अनंतकाल तक प्रवंचित दलित, विसंगठित, शोषित, पीड़ित और प्रताड़ित मानवता को मुक्ति का मार्ग दीपित करती रहेगी । वैश्विक इतिहास में ऐसे आत्मस्थित प्राज्ञ मनस्वी महामानव की तुलना किसी से भी नहीं की जा सकती है । पाश्चात्य मनीषी प्रो० मैक्समूलर ने मुक्तकंठ से स्वीकार किया है कि ''स्वामी दयानंद एक विद्वान थे । उनके धर्म, नियमों की नींव ईश्वर-कृत वेदी पर था । उन्हें वेद कंठस्थ थे । उनके मन और मस्तिष्क में वेदों ने घर किया हुआ था । वर्तमान समय में संस्कृत का ही एक बड़ा विद्वान्, साहित्य का पुतला, वेदों के महत्व को समझने वाला, अत्यंत प्रबल नैयायिक और विचारक यदि भारतवर्ष में हुआ है तो वह महर्षि दयानंद सरस्वती था ।'' यथार्थ में महाप्राज्ञदर्शी दयानंद सरस्वती अपने युग के ही नहीं, बल्कि वे संपूर्ण स्वर्णिम इतिहास में अपने ढंग के अकेले महाप्राज्ञ प्रोढ़ महामानव थे । उन्होंने म्रियमाण जीवन को चिन्मय नवजीवन दिया, मर्त्य—तिमिर को खंडित कर अमृत-ज्योति से ज्योतिर्मय किया और एक ऐसा श्रुति स्नेहोज्वल दर्शन का प्रणयन किया, जिसने मतमतांतर—तिमिराच्छन्न धरती के प्रत्येक अणु, परमाणु को भागवत ज्योति की पराचेतना से उद्भासित किया ।

वैदिक चिंतन परंपरा के कौस्तुभमणि पुण्यश्लोक परमहंस स्वामी दयानंद सरस्वती का अवतरण उस मधुरिमामय, सुषमामय विचारधारा का अवतरण है जिसमें वेद-विहित सत्य, अहिंसा, धृति, धर्म, ध्यान, साधना, स्नेह, शांति और आलोकमय सातत्य सुंदरता की देवत्व—ज्योतिरस भावना प्रतिबिंबित

www.thearyasamaj.org

तथा मुखरित होती है । धन्य है महर्षि दयानंद की वह सुतीक्ष्ण विमल वाणी जो मानव के शरीर को ही नहीं बल्कि उसके मन-मानस के कलुषित विचारों को काटकर पल्लवित-पुष्पित करती रही और प्रफुल्लित-सुरभित कुसुमों की सुगंध की तरह महक महक कर दिल-दिमाग में प्रवेश करती चली गई जिससे मर्त्य मानव में नवजीवन का दिव्य संचार हुआ तथा जिससे औदात्यमूलक सार्वभौम मानव धर्म की पुनर्स्थापना संभव हो सकी । कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने सच ही लिखा है ''मेरा सादर प्रणाम हो उस महान गुरु दयानंद को, जिसकी दृष्टि ने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में सत्य और एकता को देखा । जिस गुरु का उद्देश्य भारतवर्ष को अविद्या, आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्व के अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता की जागृति में लाना था । उसे मेरा बारंबार प्रणाम है । आधुनिक भारत के मार्गदर्शक महर्षि दयानंद जी सरस्वथी को मैं सादर श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ ।'' वस्तुतः इन्होंने अपने प्राज्ञप्रौढ़ विराट् व्यक्तित्व तथा कमनीय कर्त्तृत्व से समस्त देश को भीषण झंझावत की तरह झकझोर कर जगाया, उन्हें अंधविश्वासों की कुहेलिका, पाखंडों के बंधनों से परिचित किया तथा संघर्ष के प्रभावान पृष्ठभूमि प्रस्तुत की और वैदिक संस्कृति की अमृत-ज्योति की परंपरा को बटोरकर, सहेजकर विराट फलक पर उपस्थापित किया तथा उसके हृदय में शुद्धबोध विश्वासों को सृष्ट किया । उन्होंने जनमानस में शक्ति, भक्ति, ईश-अनुरक्ति एवं वेद-सुधा-सिंधु को प्रवहमान किया ।

गौरवमय अक्षर-पुरुष स्वामी दयानंद सरस्वती ने मिथ्यामत पंथों के प्रपंच प्रमादिक अंधविश्वासों को उन्मूलित किया तथा अपनी सर्जनात्मक संचेतना की चारुता से अखिल मानव-मिलिंदों को परिमार्जित किया । वेदज्योति प्रीति की महोज्वल महत्ता की मधुरिमा को निश्चेतन मन में समुच्छ्वासित किया तथा अंतर्जीवन को चिन्मूल्यों से भास्वर किया । अपनी आभिजात्य ऊर्ध्वगामिनी गरिमा से भूली-भटकी हतप्रभ मानव-मरालों को ऊर्ध्वदृष्टि प्रदान कर भागवत कर्म से परिवेष्टित-पोषित किया, जिससे अंधी आस्था, मानसिक दासता, धूर्त-पुरोहित-पंडों का शोषण चक्र, धरासीन हो गया । उन्होंने हर कुटिल कुरूपता पर अपना मृदुल मनोहर सौंदर्य-सुषमा-सजीली-स्नेहधार को उड़ेल दिया, जिससे बर्बर पाखंड मन, मूर्छित-विलासी तन अनुप्राणित हो उठा । उन्होंने अपनी चिदुन्मेष ऊर्ध्व आरोहण मेधा एवं भगवत ज्योतिरसि ऊर्जा से असुंदर थोथी आस्थाओं को विखंडित कर श्रेयस्कर सुंदर पाथोधि को प्रवाहित किया । उन्होंने सूक्ष्म अनुवीक्षण भगवच्छवि से मनः क्षितिज पर सत्यार्थ का अरुणोदय कर मानवता का पुनरुत्थान किया । उनकी वैदिक विभूषित विमल वाणी की दिव्य निनाद से शोषित-उत्पीड़ित, उपेक्षित नारी सम्मान की मधुरिमा से संपूजित हो उठी तथा दलित शूद्र जन जागरणशील बन गए । अधोमुखी उर, कुंठित जीवन, मतवाद कुहासों से धूमिल मन, अश्रु विजड़ित नयन अमित आलोक से पारलौकिक प्रांगण में आरोहण किया और नव्य चेतना से मन को निहाल किया । उस महाचेता की प्रीति चेतना का रस संजीवन तथा चारु चंद्र की शीतल छाया जिसको मिल गई, वह पराजय से अपराजेय बन गया। उनकी सत्यार्थ प्रकाश की संचेतना से जन मन अंतपर्थ आलोकित-उन्मेषित होकर आत्म समाधि तथा विराट् भूमा की गरिमा से महिमा मंडित हो गया । राष्ट्रीय अखंडता-एकता के वैतालिक सरदार

(शेष पृष्ठ २० पर)

www.thearyasamaj.org

शिक्षा की पृष्ठभूमि

–सत्येन्द्र सिंह आर्य

हमारे राष्ट्र में प्राचीन समय में शिक्षा और संस्कृति परस्पर अन्योन्याश्रित थे, एक दूसरे में मिले हुए थे । मनुष्य को शिक्षा के माध्यम से देवत्व की ओर ले जाना ही आर्य संस्कृति की विशेषता थी। ये मानवीय मूल्य सार्वभौमिक होते हैं । कोई मजहब, मत-मतान्तर या समाज शास्त्र नहीं सिखाता कि झूंठ, फरेब, चोरी, दुराचार, देश-द्रोह करना चाहिए । सब शिष्ट व्यवहार और सामाजिक मर्यादाओं के पालन की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं । राष्ट्र का हित भी इसी में है कि हमारे विद्यार्थियों की शिक्षा सदाचार और सत्योन्मुख हो ।

शिक्षा में सांस्कृतिक झलक –

परन्तु आज की हमारी समूची शिक्षा प्रणाली में अतीत के उस सांस्कृतिक तत्व का नितान्त अभाव है, उसके प्रति उपेक्षा का भाव है तथा कुछ तथाकथित बुद्धिजीवियों के मन में उपहास का भाव भी है । हमारा अतीत तो गौरवशाली रहा है । जैसे बिना नींव के भवन की कल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार अतीत पर दृष्टि डाले बिना वर्तमान को सँवारना कठिन है । बिना वर्तमान को सँवारे, भविष्य का सही निर्माण सम्भव नहीं होगा । जो दिशाहीनता आज राजनीति में है, समाज-नीति में है, वही शिक्षा-नीति में भी जड़ जमा चुकी है । भारत में राम और कृष्ण के नाम की माला जपने वालों की संख्या करोड़ों में है परन्तु वे इस बात पर कतई विचार नहीं करते कि राम और कृष्ण द्वारा प्राप्त शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा में तथा उनके चरित्र में नैतिकता, सत्य, सदाचार (सांस्कृतिक तत्व) का भाग कितना अधिक था । आज की शिक्षा में से वह नैतिकता नदारद है ।

संस्कृति-विहीन शिक्षा का दोष –

आज शिक्षा का उद्देश्य मात्र यह प्रतीत होता है कि विद्या अर्थकारी होनी चाहिए यानी विद्या प्राप्त करके कहीं सरकारी या अच्छी सी प्राईवेट नौकरी मिल जाए । इसीलिए मनुष्य में शिक्षा के माध्यम से देवत्व की प्रतिष्ठा के बजाय पशुत्व की प्रतिष्ठा होने का प्रचलन बढ़ रहा है । संचार प्रौद्योगिकी (आई.टी.) और कम्प्यूटर की पढ़ाई करके बैंकों, एयरलाईनों में कम्प्यूटर पर काम करने के बजाय अलकायदा (आतंकवादी संगठन) से जुड़कर रिमोट कंट्रोल के द्वारा विस्फोट करना, भवनों व पुलों को नष्ट करना और निरपराध लोगों को दर्दनाक ढंग से मौत के घाट उतारना उसी पशुवृत्ति के विकसित होने का प्रमाण है । आर्य संस्कृति और शिक्षा-प्रणाली में मनुष्यता को हानि पहुंचाने वाले ऐसे कुकृत्यों के लिए कोई स्थान नहीं था ।

सदाचार –

हमारी शिक्षा प्रणाली में पुस्तक सम्बन्धी शिक्षा के साथ सदाचार पर बहुत बल दिया जाता था। देवत्व की ओर अर्थात् सद्गुणों-अच्छाइयों की ओर अग्रसर मनुष्य के जीवन की सबसे पहली आधार-शिला सदाचार ही है । अंग्रेजी कहावत में निम्नलिखित भाव हमारी संस्कृति में से ही लिया गया है —

www.thearyasamaj.org

If wealth is lost, nothing is lost.

If health is lost, something is lost.

If character is lost, everything is lost.

यह सदाचार भी कोई एकल वस्तु नहीं है कि जब इच्छा हुई तो ओढ़ ली और जब मन में आया तो उतार कर एक ओर फेंक दी । यह जीवन में निरन्तर धारण किया जाने वाला गुण है, व्यक्तित्व की शोभा को बढ़ाने वाला उसका एक आवश्यक अंग है । मन-बुद्धि-शरीर-तीनों का समुचित विकास उस सदाचार में समाहित है । शरीर से दुर्बल, बौद्धिक दैत्यों (Intellectual Giants) की संगति उस सदाचार से नहीं बैठती । निरक्षर भट्टाचार्य परन्तु शरीर से पुष्ट पहलवान की संगति भी उस सदाचार से नहीं बैठती । पढ़े-लिखे और शरीर से स्वस्थ परन्तु दुष्ट दुराचारी भी सदाचार के उस मानक पर खरे नहीं उतरते । आर्य-जनोचित शिष्टता से शून्य मानसिक संस्कार भी सदाचार की श्रेणी में नहीं आता । जिस सदाचार पर हमारी संस्कृति को गर्व रहा है और है — उसमें शरीर, बुद्धि और मन तीनों का अधिकतम विकास अपेक्षित है तथा पूर्व में यही हमारी शिक्षा-प्रणाली का अंग था । इसी से ऐसे शिक्षित (पण्डित) बनते थे —

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत् ।

आत्मवत् सर्वभूतेषु य पश्यति स पण्डितः ।।

शास्त्रों की दृष्टि से इसी सदाचार का नाम ब्रह्मचर्य है । ब्रह्मचर्य कोई निषेधात्मक वस्तु न होकर, जीवन में सुख-प्राप्ति का और विद्याप्राप्ति का विधेयात्मक उपाय है । विद्या-प्राप्ति के प्रयास में साफल्य और उस विद्या से मनुष्य को सुख-प्राप्ति की सम्भावना—ये दोनों बातें बहुत सीमा तक उस व्यक्ति की चारित्रिक शुचित्रा पर निर्भर होती हैं । मनुष्य को और समाज को देवत्व की ओर ले जाने वाली इस प्रकार की सदाचार-युक्त शिक्षा प्रदान करने के लिए तीन व्यक्ति उत्तरदायी हैं ।

साभार : आदर्श विद्यार्थी-जीवन

(पृष्ठ २८ का शेषांश)

रघुमल आर्य विद्यालय के छात्रों का कार्यक्रम :- २९ दिसम्बर २०१६ के सायंकालीन सत्र में आर्य समाज द्वारा संचालित रघुमल आर्य विद्यालय के छात्रों ने एक बड़ा ही सुन्दर नाटक '६ माह का झूठ' का मंचन किया जिसमें विद्यालय के छात्र सुजीत मल्लिक राजू गुप्ता, राकेश ठाकुर बिक्की दास एवं सूर्यकान्त ने भाग लिया । इस नाटक की निर्देशिका थी अध्यापिका श्रीमती समाप्ति सरकार (सहायक शिक्षिका रसायन शास्त्र) ।

धन्यवाद ज्ञापन :- १ जनवरी रविवार को सायंकालीन सत्र में सन्ध्या भजन व व्याख्यान के उपरान्त मन्त्री श्री दीपक आर्य जी ने अपने सभी सहयोगियों, आगन्तुक विद्वानों, दानी दाताओं, सभी अधिकारियों एवं अन्तरंग के सदस्यों, सभी कर्मचारियों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए सभी के प्रति कृतज्ञता पूर्वक धन्यवाद ज्ञापित किया, जिनके सकारात्मक सहयोग से यह वार्षिकोत्सव सफलतापूर्वक निर्विघ्न सम्पन्न हुआ ।

अन्त में शान्तिपाठ के साथ वार्षिकोत्सव का समापन हुआ ।

श्री दीपक आर्य, (मन्त्री)

शोभा यात्रा में सम्मिलित हुए । कलाकार स्ट्रीट में आर्य समाज कलकत्ता के वरिष्ट सदस्य श्री शीतल प्रसाद गुप्ता के परिवार के सदस्यों ने शर्बत माल्यार्पण तथा सत्यनारायण पार्क के निकट आर्यसमाज बड़ाबाजार के अधिकारियों ने फल वितरण द्वारा शोभा यात्रा का स्वागत किया ।

स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस :- २३ दिसम्बर शुक्रवार को वार्षिकोत्सव की पूर्व संध्या पर सायंकालीन सभा में रात्रि ७ बजे से ९.३० बजे तक स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस मनाया गया । इसकी अध्यक्षता श्री चांदरतन दम्माणी (आर्य समाज बड़ाबाजार के कार्यकारी प्रधान) जी ने की । वक्तागण थे — आचार्य डॉ० शिवदत्त पाण्डेय, श्री पं० देवनारायण जी, पं० आत्मानन्द शास्त्री, श्री योगेशराज उपाध्याय । कार्यक्रम का संयोजन श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल जी ने किया ।

बालक सत्संग :- आर्यसमाज में प्रत्येक रविवार को बाल सत्संग चलता है । बाल सत्संग के बच्चों का कार्यक्रम वार्षिकोत्सव के अवसर पर रविवार २५ दिसम्बर को अपराह्न ३ बजे से ५.३० बजे के मध्य हुआ । जिसमें बाल सत्संग के बच्चों द्वारा यज्ञ, मन्त्र पाठ, प्रश्नोत्तर तथा चित्रकला प्रदर्शनी के कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये । कार्यक्रम के अन्त में सभी बच्चों को पुरस्कार भी प्रदान किये गये । इसके संयोजक थे — श्री शिवकुमार जायसवाल । बाल सत्संग पं० वेदप्रकाश शास्त्री जी के सानिध्य में चलता है। कार्यक्रम को सफल बनाने में श्री सुदेश कुमार जायसवाल विशेष रूप से सक्रिय रहे । मंच पर बंग भाषी विद्वान् सर्वश्री वानप्रस्थ प्रेमभिक्षु जी, पं० मधुसूदन जी, पं० सतीश मण्डल, पं० अपूर्व देव जी, श्रीमती अर्चना शास्त्री उपस्थित थे ।

राष्ट्र-रक्षा सम्मेलन :- रविवार २५ दिसम्बर को सायंकालीन सत्र में सायं ७ बजे से ९.३० बजे तक राष्ट्र-रक्षा सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसकी अध्यक्षता आर्य समाज बड़ाबाजार के वरिष्ठ सदस्य श्री खुशहाल चन्द्र आर्य जी ने की । वक्तागण थे श्री शिवदत्त पाण्डेय जी, विवेक जायसवाल, पं० योगेशराज उपाध्याय, पं० नरेशदत्त आर्य, श्री रमेश अग्रवाल, पं० मधुसूदन जी । संयोजक थे — आर्यसमाज कलकत्ता के पूर्व प्रधान श्री मनीराम आर्य ।

महिला सम्मेलन :- बुधवार २८ दिसम्बर अपराह्न २ बजे से ५ बजे के मध्य महिला सम्मेलन आयोजित हुआ जिसकी अध्यक्षता डॉ ज्योत्सना आर्या (वेदरत्न, रीवा) जी ने की । कार्यक्रम के संयोजक थे पं० नचिकेता भट्टाचार्य एवं कार्यक्रम की संचालिका थीं श्रीमती प्रवीणा जायसवाल । इस अवसर पर स्त्री आर्य समाज की सदस्याओं द्वारा सामूहिक सुमधुर भजन, सस्वर वेद मन्त्रपाठ तथा पद्यानुवाद अत्यन्त आकर्षक रूप से प्रस्तुत किया गया । इस अवसर पर स्त्री समाज की सदस्याओं द्वारा भजनों की अन्ताक्षरी भी प्रस्तुत की गयी । श्रीमती सन्तोष गोयल जी ने यम-नियम आदि योग के अंगों को अपने वक्तव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया । इस अवसर पर 'धैर्य', नामक नाटिका का मञ्चन भी किया गया । आर्य स्त्री समाज की वरिष्ठ सदस्या श्रीमती कमला जायसवाल जी का सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया ।

वर्ष भर विशिष्ठ योगदान प्रदान करने वाली विशिष्ट सदस्यायों को स्मृति चिह्न प्रदान किया गया । आर्य समाज बड़ाबाजार के कार्यकर्ता प्रधान एवं विशिष्ट समाज सेवी भी चांदरतन दम्मानी ने सम्मेलन के प्रस्तुति की भूरि-भूरि प्रशंसा की । पूरा कार्यक्रम पं० नचिकेता भट्टाचार्य के निर्देशन में सम्पन्न हुआ । इस सुन्दर निर्देशन के लिए श्री चांदरतन दम्मानी जी ने अपने परिवार की ओर से ५०००/- की विशेष

www.thearyasamaj.org

धनराशि श्री पं० नचिकेता जी को प्रदान करने की घोषणा की।

अपने अध्यक्षीय भाषण में विदुषी डा० ज्योत्सना जी ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि देश, जाति और सांस्कृतिक मूल्यों के उत्थान हेतु आर्य बन्धुओ के साथ महिलाओं को भी आगे आने की आवश्यकता है जिससे देव दयानन्द जी महाराज की आशाओं के अनुसार समाज का निर्माण हो सके। प्रधाना सुशीला दम्माणी जी ने सभी को धन्यवाद ज्ञापित किया।

आर्य संस्कृति सम्मेलन :- ३० दिसम्बर को सायंकालीन सत्र में सायं ७ बजे से ९.३० बजे तक आर्य संस्कृति सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसकी अध्यक्षता डॉ० शिवदत्त पाण्डेय जी ने की। मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे राजीव हर्ष (सम्पादक - राजस्थान पत्रिका) एवं श्री अनिल कुमार राय (सम्पादक, समाज्ञा)। वक्तागण थे — डॉ ज्योत्सना आर्या, श्री योगेश राज उपाध्याय, श्री मनीराम आर्य, श्री नरेन्द्र दत्त भजनोपदेशक, इस कार्यक्रम के संयोजक थे श्री सत्यप्रकाश जायसवाल।

वेद सम्मेलन :- शनिवार ३१ दिसम्बर को सायंकालीन सत्र में सायं ७ बजे से ९.३० बजे तक डॉ० ज्योत्सना आर्या वेदरत्न जी की अध्यक्षता में वेद सम्मेलन का आयोजन हुआ। वक्तागण थे — आचार्य डॉ० शिवदत्त पाण्डेय जी, पं० देवव्रत तिवारी, पं० देवनारायण तिवारी, पं० नरेशदत्त आर्य, श्री मनीराम आर्य। संयोजक थे — श्री श्रीराम जी आर्य।

सायंकालीन अधिवेशन :- प्रत्येक दिन सायंकाल ६ बजे से ९.३० बजे तक (सम्मेलन को छोड़कर) सन्ध्या, भजन, उपदेश, गुरुकुल के बच्चों के कार्यक्रम तथा आगन्तुक विद्वानों के व्याख्यान हुए।

बंगभाषा कार्यक्रम :- प्रत्येक दिन अपराह्न ३ बजे से ५ बजे तक बंगभाषा कार्यक्रम हुआ जिसमें पं० वेदप्रकाश शास्त्री, पं० मधुसूदन सिद्धान्त विशारद, पं० सतीशचन्द मण्डल, श्री अपूर्वदेव शर्मा, काशीनाथ आर्य, पं० जयन्त शास्त्री, श्री सुप्रभा महापात्र, महात्मा प्रेमभिक्षु जी की ओर से दैनिक अग्निहोत्रियों एवं निरामिष भोजी बंगला भाषियों को पुरस्कृत किया गया।

ऋषि लंगर :- १ जनवरी २०१७ रविवार को प्रातः ऋग्वेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति तथा सामूहिक रविवारीय सत्संग के उपरान्त अपराह्न १.३० बजे से ऋषि लंगर में हजारों लोगों ने हिस्सा लिया।

गुरुकुलीय कार्यक्रम :- १ जनवरी रविवार को साप्ताहिक सत्संग के पश्चात् लिलुआ गेड़िया गुरुकुल की छात्राओं द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों को प्रस्तुत किया गया। इनका कार्यक्रम बहुत सराहनीय रहा एवं दर्शकों द्वारा इन्हें पुरस्कृत किया गया।

आर्य कन्या महाविद्यालय का पुरोगम :- आर्य समाज कलकत्ता के १३१वें वार्षिकोत्सव के शुभअवसर पर आर्य समाज कलकत्ता द्वारा संचालित आर्य कन्या महाविद्यालय की छात्राओं द्वारा २४ दिसम्बर २०१६ को सायंकालीन सत्र में एक सुन्दर कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। कार्यक्रम की शुरुआत प्राथमिक विभाग की छात्राओं द्वारा प्रारम्भ हुआ इसके बाद माध्यमिक एवम् उच्चमाध्यमिक विभाग की छात्राओं ने अत्यन्त सुन्दर गीतों एवं नृत्य द्वारा सुन्दर प्रदर्शन किया।

कार्यक्रम के अन्त में विद्यालय की कार्यकारिणी समिति के मंत्री श्री मनीराम आर्य ने सभी की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा आभार व्यक्त किया। आर्य महिला शिक्षा मण्डल ट्रस्ट के प्रधान श्री श्रीराम आर्य जी ने सभी प्रतिभागियों को पुरस्कृत करने की घोषणा की।

(शेष पृष्ठ २६ पर)

आर्य समाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी कोलकाता - ६ के लिए श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल द्वारा प्रकाशित तथा एशोशियेटेड आर्ट प्रिण्टर्स, ७/२, विडन रो, कोलकाता-६ में मुद्रित। मो. : ९८३०३७०४६३